ज

न

र

व

हमारे कुछ अन्य प्रकाशन

पख हीन	उपन्यास	श्री शरण
जूही की कली	,,	,, ,,
काला ब्राह्मण	,,	,, ,,
साँचा	,,	प्रभाकर माचवे
वह हार गई	,,	सत्यदेव शर्मा
साहित्य सुमन	निबन्ध	श्री शरण
विचार और समस्यायें	,,	,, ,,
निबन्ध कौमदी	,,	,, ,,
पगली	कहानी संग्रह	मोपासाँ
जनरव	कहानी संग्रह	स० रामानन्द 'दोषी' रमाकान्त 'कान्त'
तुरप-चाल	,, ,,	मिन्टो' अनु० कान्त
ढाक के तीन पान	,, ,,	रमाकान्त 'कान्त'
तूलिका	कविता संग्रह	स० रमाकान्त 'कान्त'
समय के स्वर	एकांकी संग्रह	मोहन भोपटा
उलझन	,, ,,	राजाराम शास्त्री
डिंगल साहित्य मे नारी	इतिहास	हनुवन्तसिंह देवड़ा

जनरव

सम्पादक

रामानन्द 'दोषी'

रमाकान्त 'कान्त'

नव साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली–१

प्रथमावृत्ति
नवम्बर १९५८

आवरण पृष्ठ श्री बी० एम० आनन्द
तीन रुपया चार आने

सहयोगी प्रकाशन, ६१७ छत्ता मदन गोपाल, दिल्ली।
मुद्रक—सचदेवा प्रेस, हौज काजी, दिल्ली।

उन समस्त जाने–अजाने शिल्पियो को

जिन्होने

हिन्दी कथा-साहित्य को बल दिया है

सादर

समर्पित

भूमिका नहीं

यह भूमिका नही, है है सफाई जिसे देना मेरे लिए नितान्त अनिवार्य हो गया है। बात का सम्बन्ध थोडा पहले— उस समय से है, जब हम लोगो के सम्पादन मे 'तूलिका' (काव्य-सग्रह) प्रकाशित हुआ था। उस समय दृष्टिकोण केवल उन रचनाओ को प्रकाश मे लाना था, जिन का कोई निजी संग्रह तब तक प्रकाशित नही हुआ था। "तूलिका" की भूमिका मे अपने इसी दृष्टि-कोण को स्पष्ट करते हुये 'दोषी' जी ने एक शब्द का प्रयोग किया था, जिसे लेकर काफी चख-चख चली। वह शब्द था 'छुटभैये'। उस शब्द के बारे में मै यही कहूंगा, कि जिन तनिक भी समझदार लोगो की नजरो से वे पक्तियाँ गुजरी, उन्हे यह समझने देर न लगी कि साहित्य में उपेक्षित कलाकारो की किस दर्जे हिमायत और वकालत उनमें की गई थी। खेद है कि जिन व्यक्तियो की हिमायत और वकालत 'दोषी' जी ने की थी, उन्होने आभार मानने की उपेक्षा हम लोगो की खिलाफत मे भरकस अपनी (शक्ति व्यय की। इस घटना से मुझे चोट पहुचना स्वाभाविक था) प्रतिक्रिया स्वरूप नए कलाकारो को प्रोत्साहन देने की अपेक्षा जाने-माने, सिद्धहस्त और लब्धप्रतिष्ठ कला-

कारो का सहयोग प्राप्त करना ही मुझे अधिक श्रेयस्कर प्रतीत हुआ है प्रस्तुत पुस्तक उसी प्रयोग का फल है। 'तूलिका' में की गई घोषणा के अनुरूप 'जनरव' नए लेखकों की कहानियों का संग्रह क्यों नहीं है,—मैं समझता हूँ इस सम्बन्ध में यह सफाई काफी है।

६१७ छत्ता मदन गोपाल
दिल्ली-६

रमाकान्त 'कान्त'
१३-११-५५

अनुक्रमणिका

कहानी और कहानीकार		पृष्ठ
१ गदल	डा० रांगेय राघव	११
१ एक दिन की डायरी	श्री मार्कण्डेय	३१
३. एक्सरे	श्री सत्येन्द्र शरत्	४४
४. हेड मास्टर	श्री प्रभाकर माचवे	५६
५. हवा मुर्ग	श्री मोहन राकेश	६६
६. ढीगर	श्री महावीर अधिकारी	७४
७ एक पत्र	श्रीमती रजनी पनिकर	८७
८ दिल मलमज कलेजा	श्री बलराज साहनी	९३
९ समाधि भाई रामसिंह	श्री भीष्म साहनी	१०५
१० बीन का दरवाजा	श्री कृष्ण बल्देव वैद	११७
११ आकाश की छाया मे	श्री विष्णु प्रभाकर	१२९
१२ घर	श्री 'आवारा'	१३६
१३ परदे की दीवार	श्री हृदयनारायण मेहरोत्रा 'हृदयेश'	१४०
१४. बुल्ली	श्री सत्यदेव शर्मा	१४८
१५. सिगरेट और पेशो	श्री ललित सहगल	१५४
१६ दूर के ढोल	श्री विश्वनाथ भटेले	१६२
१७ ममता	श्री स्वदेश कुमार	१७०
१८. काश, मै कवि न होता	श्री रमाकान्त 'कान्त'	१८०
१९ शंकर	श्री रामावतार त्यागी	१८५
२०. यात्रा का अन्त	श्री रामानन्द 'दोषी'	१९३

रांगेय राघव

गदल

बाहर शोर-गुल मचा। डोडी ने पुकारा—कौन है ?

कोई उत्तर नहीं मिला, आवाज आयी—हत्यारिन ! तुझे कतल कर दूंगा !

स्त्री का स्वर आया—करके तो देख ! तेरे कुनबे को डायन बनके न खा गयी, निपूते !

डोडी बैठा न रह सका। बाहर आया।

क्या करता है, क्या करता है, निहाल ?—डोडी बढ़कर चिल्लाया—आखिर तेरी मैया है।

मैया है !—कहकर निहाल हट गया।

अरे तू हाथ उठाके तो देख !—स्त्री ने फुफकारा—कढ़ी खाए ! तेरी लीक पर बिलियाँ चरवा दूं ! समझ रखियो ! मत जान रखियो, हाँ ! तेरी आसरतू नहीं हूँ।

भाभी !—डोडी ने कहा—क्या बकती है ? होश में आ !

वह आगे बढ़ा ! उसने मुड़कर कहा—जाओ सब ! तुम सब लोग जाओ !

निहाल हट गया। उसके साथ ही सब लोग इधर-उधर हो गये।

डोडी निस्तब्ध छप्पर के नीचे लगा बरेंडा पकड़े खड़ा रहा। स्त्री

बही बिखरी हुई सी बैठी रही। उसकी आँखों में आग-सी जल रही थी।

उसने कहा—मैं जानती हूँ, निहाल में इतनी हिम्मत नहीं। यह सब तैने किया है, देवर!

हाँ, गदल!—डोडी ने धीरे से कहा। मैंने ही किया है।

गदल सिमट गयी। कहा—क्यों, तुझे क्या जरूरत थी?

डोडी कह नहीं सका। वह ऊपर से नीचे तक झनझना उठा। पचास साल का वह लंबा खारी गूजर, जिसकी मूँछें खिचड़ी हो चुकी थीं, छप्पर तक पहुँचा-सा लगता था। उसके कन्धे की चौड़ी हड्डियों पर अब दीवे का हल्का प्रकाश पड़ रहा था, उसके शरीर पर मोटी फतूही थी और उसकी धोती घुटनों के नीचे उतरने पहले ही झूल देकर चुस्त-सी ऊपर की ओर लौट जाती थी। उसका हाथ कर्रा था और वह इस समय निस्तब्ध खड़ा रहा।

स्त्री उठी। वह लगभग ४५ वर्षीया थी, और उसका रंग गोरा होने पर भी आयु के धुँधले में अब मैला-सा दिखने लगा था। उसको देख कर लगता था कि वह फुर्तीली थी। जीवन भर कठोर मेहनत करने से, उसकी गठन के ढीले पड़ने पर भी, उसकी फुर्ती अभी तक मौजूद थी।

तुझे शरम नहीं आती, गदल?—डोडी ने पूछा।

क्यों शरम क्यों आयेगी? गदल ने पूछा।

डोडी क्षण भर सकते में पड़ गया। भीतर के चौबारे से आवाज आयी—शरम क्यों आयेगी इसे? शरम तो उसे आये, जिसकी आँखों में हया बची हो।

निहाल! डोडी चिल्लाया: तू चुप रह।

फिर आवाज बंद हो गयी।

गदल ने कहा मुझे क्यों बुलाया है तूने?

डोडी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। पूछा—रोटी खायी है?

नहीं। गदल न कहा—खाती भी कब ? कमबख्त रास्ते में मिले ।
खत होकर लौट रही थी। रास्ते में अपने कण्डे बीनकर संझा के लिए
ले जा रही थी।

डोडी ने पुकारा—निहाल ! बहू से कह, अपनी सास को रोटी
दे जाये।

भीतर से किसी स्त्री की ढीठ आवाज सुनायी दी—अरे, अब
लोहरो की बेयर आयी है, उन्हे क्या गरीब खारियो की रोटी भायेगी !

कुछ स्त्रियो ने ठहाका लगाया।

निहल चिल्लाया—सुन ले, परमेसुरी, जगहँसाई हो रही है।
खारियो की तो तूने नाक काटकर छोडी।

२

गुन्ना मरा, तो पचपन बरस का था। गदल विधवा हो गयी।
गदल का बडा बेटा निहाल तीस बरस के पास पहुँच रहा था। उसकी
बहू दुल्लो का बडा बेटा सात का, दूसरा चार का और तीसरी छोरी
थी जो उसकी गोद मे थी। निहाल से छोटी तर-ऊपर की दो
बहिनें थी चंपा और चमेली, जिनका, क्रमश झाज और बिस्वारा गाँवो
मे ब्याह हुआ था। आज उनकी गोदियो से उनके लाल उतर कर धूल
मे घुटुरुव चलने लगे थे। अंतिम पुत्र नरायन अब बाईस का था, जिसकी
बहू दूसरे बच्चे की माँ होने वाली थी। ऐसी गदल, इतना बडा परिवार
छोड़कर चली गई थी और बत्तीस साल के एक लौहरे गूजर के यहाँ जा
बैठी थी।

डोडी गुन्ना का सगा भाई था। बहू थी, बच्चे भी हुए। सब मर
गये। अपनी जगह अकेला रह गया। गुन्ना ने बडी-बडी कही, पर वह
फिर अकेला ही रहा, उसने ब्याह नही किया, गदल ही ही के चूल्हे पर
खाता रहा, कमाकर लाता, तो उसी को दे देता, उसी के बच्चो को
अपना मानता, कभी उसने अलगाव नही किया। निहाल अपने चाचा
पर जान देता था। और फिर खारी गूजर अपने को लौहरों से ऊँचा

समझते थे।

गदल जिसके घर जा बैठी थी, उसका पूरा कुनबा था। उसने गदल की उम्र नहीं देखी, यह देखा कि खारी औरत है, पड़ी रहेगी। चूल्हे पर दम फूंकनेवाली की जरूरत भी थी।

आज ही गदल सवेरे गई थी और शाम को उसके बेटे उसे फिर बाँध लाये थे। उसके नये पति मौनी को अभी पता भी नहीं हुआ होगा। मौनी रँडुवा था। उसकी भाभी जो पाव फैला कर मटक-मटक-कर छाछ बिलोती थी, दुल्लो सुनेगी, तो क्या कहेगी?

गदल का मन विक्षोभ से भर उठा।

२

आधी रात हो चली थी। गदल वहीं पड़ी थी। डोडी वहीं बैठा चिलम फूंक रहा था।

उस सन्नाटे मे डोडी ने धीरे से कहा—गदल।

क्या है?—गदल ने हौले से कहा।

तू चली गयी न?

गदल बोली नहीं। डोडी ने फिर कहा—सब चले जाते है। एक दिन तेरी देवरानी चली गयी, फिर एक-एक कर के तेरे भतीजे भी चले गये। भैया भी चला गया। पर तू जैसे गयी, वैसे तो कोई भी नहीं गया। जग हँसता है, जानती है?

गदल ने बुरबुराया—जग हँसाई से मैं नहीं डरती, देवर! जब चौदह की थी, तब तेरा भैया मुझे गाव मे देख गया था। तू उसके साथ तेल पिया लट्ठ लेकर मुझे लेने आया था न, तब? तब मैं आयी थी कि नहीं? तू सोचता होगा कि गदल की उमिर गयी, अब उसे खसम की क्या जरूरत है? पर जानता है, मैं क्यों गयी?

नहीं।

तू तो बस यही सोचा कर। होगा कि गदल गयी, अब पहले से रोटियों का आराम नहीं रहा। बहुएँ नहीं करेंगी तेरी चाकरी, देवर!

तूने भाई से और मुझसे निभायी, तो मैंने भी तुझे अपना ही समझा ! बोल, झूठ कहती हूँ ?

नहीं, गदल । मैंने कब कहा ।

बस यही बात है, देवर ! अब मेरा यहाँ कौन है ! मेरा मरद तो मर गया । जीते जी मैंने उसकी चाकरी की, उसके नाते उसके सब अपनों की चाकरी बजायी । पर जब मालिक ही न रहा, तो काहे को हड़कम्प उठाऊँ ! यह लड़के, यह बहुएँ ! मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी !

पर क्या यह सब तेरी औलाद नहीं, बावरी । बिल्ली तक अपने जायों के लिए सात घर उलट-फेर करती है, फिर तु तो मानुस है। तेरी माया-ममता कहाँ चली गयी ?

देवर, तेरी कहाँ चली गयी थी, जो तूने फिर ब्याह न किया !

मुझे तेरा सहारा था, गदल !

कायर ! भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया, तब तू मुझे रखकर घर नहीं बसा सकता था ! तूने मुझे पेट के लिए पराई ड्योढ़ी लँघवायी । चूल्हा मैं तब फूकूँ, जब मेरा कोई अपना हो । ऐसी बाँदी नहीं हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके । मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी । समझा, देवर ! तूने तो नहीं कहा तब । अब कुनबे की नाक पर चोट पड़ी, तब सोचा, जब तेरी गदल को बहुओं ने आँखे तरेर कर देखा । अरे, कौन किसी की परवाह करता है !

गदल !—डोडी ने भर्राये स्वर से कहा—मैं डरता था । तो भला क्यों ?

गदाल, मैं बुड्ढा हू । डरता था, जग हँसेगा । बेटे सोचेंगे, शायद चाचा का अम्मा से पहले ही से नाता था, तभी तो चाचा ने दूसरा ब्याह नहीं किया । गदल, भैया की भी बदनामगी होती न ?

अरे, चल रहने दे !—गदल ने उत्तर दिया—भैया का बड़ा खयाल

रहा तुझे ! तू नही था कारज में उनके क्या ? मेरे ससुर मरे थे, तब तेरे भैया ने बिरादरी को जिवाकर ओठो से पानी छुलाया था अपने। और तुम सबने कितने बुलाये ? तू भैया, दो बेटे। यही भैया हैं, ? पच्चीस आदमी बुलाये कुल। क्यो आखिर ? कह दिया लडाई मे कानून है। पुलस पच्चीस से ज्यादा होते ही पक लै जायेगी ! डरपोक कही के ! मैं नही रहती ऐसों के।

हठात् डोडी का स्वर बदला—मेरे रहते तू पराये मरद के जा बैठेगी ?

हाँ।

अबके तो कह !—वह उठकर बढा।

सौ बार कहू, लाला !—गदल पडी-पडी बोली।—डोडी बढा।

बढ !—गदल ने फुफकारा।

डोडी रुक गया। गदल देखती रही। फिर हँसी। कहा—तू मुझे मारेगा ! तुझमे हिम्मत कहाँ है देवर ? मेरा नया मरद है न ? मरद है। इतनी सुन तो ले भला। मुझे लगता है, तेरा भइया ही फिर मिल गया है मुझे। तू ?—वह रुकी—मरद है ? अरे कोई बैयर में पिनियाता है। बढकर जो तू मुझे मारता, तो मैं समझती, तू अपनापा मानता है। मैं इस घर मे रहूँगी ?

डोडी देखता ही रह गया। रात गहरी हो गयी। गदल ने लहँगे की पर्तें फैलाकर तन ढँक लिया। डोडी ऊंघने लगा।

४

ओसारे मे दुल्ली ने अंगडाई लेकर कहा—आ गई देवरानी जी ! रात कहाँ रही ?

सूका डूब गया था। आकाश में पौ फट रही थी। बैल अब उठकर खडे हो गये थे। हवा मे एक ठडक थी

गदल ने तडाक से जवाब दिया—सो, जिठानी मेरी ! हुकुम नही चला मुझपर। तेरी-जैसी बेटियाँ हैं मेरी। देवर के नाते देवरानी हूँ

तेरी जूती नहीं।

दुल्लो सकपका गयी। मोनी उठा ही था। भन्नाया हुआ आया। बोला—कहाँ गयी थी?

गदल ने घूघट खींच लिया, पर आवाज नही बदली। कहा—वही ले गये मुझे घेर कर! मौका पाके निकल आई।

मोनी दब गया। मोनी का बाप बाहर से ही ढोर हांक ले गया। मोनी बढा।

कहाँ जाता है?—गदल ने पूछा।

खेतहार।

पहले मेरा फेसला कर जा।—गदल ने कहा।

दुल्लो उस अधेड स्त्री के नक्शे देखकर अचरज में खडी रही।

कैसा फैसला?—मोनी ने पूछा। वह उस बडी स्त्री से दब गया था।

अब क्या तेरे घर भर का पीसना पीसूंगी मै?—गदल ने कहा—हम तो दो जने हैं। अलग करेंगे, खायेंगे।

उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह कहती रही—कमाई शामिल करो, मैं नही रोकती, पर भीतर तो अलग-अलग भले।

मौनी क्षण भर सन्नाटे में खडा रहा। दुल्लो तिनककर निकली। बोली—अब चुप क्यों हो गया, देवर? बोलता क्यो नही? मेरी देवरानी लाया है कि सास! तेरी बोलती क्यों नही कढती? ऐसी न समझियो तू मुझे! रोटी तवा पर पलटने मुझे भी आंच नही लगती, जो मैं इसकी खरी-खोटी सुन लूंगी, समझा? मेरी अम्मा ने भी मुझे चूल्हे की माँटी खाकर ही जना था। हां!

अरी तो, सौत!—गदल ने पुकारा—मट्टी न खाके आयी सारे कुनबे को चबा जायेगी, डायन! ऐसी नहीं तेरी गुड की भेली है, जो न खायेंगे हम, तो रोटी गळे में फदा मार जायेगी।

मौनी उत्तर नहीं दे सका। बाहर चला गया।

दुपहर हो गयी थी। दुल्लो बैठी चरखा कात रही थी।

रगयन ने आकर आवाज दी—कोई हो ?

दुल्लो ने घघट काढ लिया। पूछा—कौन हो ?

नारायन ने खून का घट पीकर कहा—गदल का बेटा हूं।

दुल्लो घूघट में हमी। पूछा—छोटे हो कि बडे ?

छोटा।

और कितने है ?

कित्ते भी हो। तुझे क्या ?—गदल ने निकल कर कहा।

अरे आ गयी !—कह कर दुल्लो भीतर भागी।

आने दे आज उसे। तुझे बता दूगी, जिठानी !—गदल ने सिर हिला कर कहा।

अम्मा !—नारायन ने कहा—यह तेरी जिठानी है ?

क्यों आया है तू, यह बता !—गदल झल्लायी।

दण्ड भरवाने आया हूं, अम्मा !—कहकर नारायन आगे बैठने को बढा।

वही रह गदल ने कहा।

• उसी समय लोटा डोर लिये मौनी लौटा। उसने देखा कि गदल ने अपने कडे और हंसुली उतारकर फेंक दी और कहा—भर गया दण्ड तेरा। अब मत आइयो कोई। समझा ! समझ लीजो थाने में रपट कर दूंगी कि मेरे मरद का सब माल दबाकर बहुओं के कहने से बेटों ने मुझे निकाल दिया है।

नारायन का मुँह स्याह पड गया वह गहने उठाकर चला गया। मौनी मन-ही मन शकित सा भीतर आया।

दुल्लो ने शिकायत की—सुना तूने, देवर ! देवरानी ने गहने दे दिये। घुटना आखिर पेट को ही मुड़ा। तुमे चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डौर पर डंडा-धूआ तक लग जायगे, पक्का चबूतरा घर के आगे बनवायेगा। समझा देती हूँ। तुम भोले-भाले ठहरे। तिरिया

चरित्तर तुम क्या जानो। धन्धा है यह भी। अब कहूंगी, फिर बनवा मुझे।

गदल हँसी, कहा—वह जिठानी! पुराने मरद का माल नये मरद से तेरे घर की बैयर ही चुकवाती होगी। गदल तो मालकिन बन कर रहती है, समझी! बाँदी बनकर नहीं। चाकरी करूँगी तो अपने मरद की, नहीं तो बिधना मेरे ठेंगे पर। समझी! तू बीच में बोलने-वाली कौन?

दुल्लो ने रोष से देखा और पाव पटकती चली गयी।

मौनी ने देखा और कहा—बहुत बढ़-बढ़कर बातें मत कह, समझ ले, घर में बहू बन के रह!

अरे तू तो तब पैदा भी नहीं हुआ था, बालम!—गदल ने मुस्कराकर कहा—तब से मैं सब जानती हूं। मुझे क्या सिखाता है तू? ऐसा कोई मैंने काम नहीं किया है, जो बिरादरी के नेम के बाहर हो। अब तू देखे, मैंने ऐसी कोई बात की हो तो हजार बार रोक, पर सौत की ठसक नहीं सहूंगी।

तो बताऊं तुझे!—वह सिर हिला कर बोला।

गदल हंसकर ओबरी में चली गयी और काम में लग गयी।

ठंडी हवा तेज हो गयी थी। डोडी चुपचाप बाहर छप्पर में बैठा हुक्का पी रहा था। पीते पीते ऊब गया और उसने चिलम उलट दी और फिर बैठा रहा।

खेत से लौटकर निहाल ने बैल बांधे, न्यार डाला और कहा—काका!

डोडी कुछ सोच रहा था उसने सुना नहीं।

काका!—निहाल ने स्वर उठाकर कहा।

हैं!—डोडी चौंक उठा—क्या है? मुझसे कहा कुछ?

तुमसे न कहूंगा तो कहूँगा किससे? दिन भर तो तुम मिले नहीं। निम्मन कठेरा कहता था, तुमने दिन भर बाबा की धूनी के पास बिताया। यह सच है?

हाँ बेटा, चला तो गया था।

क्यों गये थे भला?

ऐसे ही जी किया था, बेटा।

और कस्बे से बनिये का आदमी आया था, घी कटाऊ करा कराया मैंने कहा नही है, वह बोला, लेके जाऊँगा। झगडा होते-होते बचा।

ऐसा नही करते, बेटा।—डोडी ने कहा—बौहर से कोई झगडा मोल लेता है?

निहाल ने चिलम उठायी, कण्डो मे से आंच बीन कर धरी और फूंक लगाता हुआ आया। कहा—मै तो गया नही। सिर फट जाने। नरायन को भेजा था।

कहाँ!—डोडी चौका।

उसी कुलच्छनी कुलबोरनी के पास।

अपनी माँ के पास?

न जाने तुम्हे उससे क्या है, अब भी तुम्हे उसपर गुस्सा नहीं आता। उसे माँ कहूगा मैं?

पर बेटा, तू न कह, जग तो उसे तेरी मा ही कहेगा। जब तक मरद जीता है, लोग बैयर को मरद की बहू कहकर पुकारते हैं. जब मरद मर जाता है, तो लोग उसे बेटे की अम्मा कहकर पुकारते हैं। कोई नया नेम थोडा ही है।

निहाल भुनभुनाया। कहा—ठीक हे, काका, ठीक है, पर तुमने अभी तक यह तो पूछा ही नही कि क्यो भेजा था उसे?

हाँ, बेटा।—डोडी ने चौककर कहा—यह तो तूने बताया ही नही! बता न?

दण्ड भरवाने भेजा था। सो पंचायत जुडवाने के पहले ही उसने तो गहने उतार फेके।

डोडी मुस्कराया। कहा—तो वह यह जता रही है कि घरवालों ने पचायत भी नही जुडवायी? यानी हम उसे भगाना ही चाहते थे।

नरायन ले आया ?

हाँ।

डोढ़ी सोचने लगा।

मैं फेर आऊँ ?—निहाल नें पूछा।

नहीं; बेटा। डोडी ने कहा—वह सचमुच रूठकर ही गयी है। और कोई बात नही है। तूने रोटी खा ली ?

नही।

तो जा। पहले खा ले।

निहाल उठ गया, पर डोडी बैठा रहा। रात का अँधेरा साँझ के पीछे ऐसे आ गया, जैसे कोई पर्त्त उलट गयी हो।

दूर ढोला गाने की आवाज आने लगी। डोडी उठा और चल पड़ा।

निहाल ने बहू से पूछा—काका ने खाली ?

नही तो।

निहाल बाहर आया। काका नही थे।

काका!—उसने पुकारा।

राह पर चिरजी पुजारी गढवाले हनुमान जी के पट बन्द करके आ रहा था। उसने पूछा—क्या है, रे ?

पाय लागं पंडितजी।—निहाल ने कहा— काका अभी तो बैठे थे...

चिरजी ने कहा—अरे, वह वहाँ ढोला सुन रहा है। मैं अभी देखकर आया हूँ।

चिरजी चला गया, निहाल ठिठका खड़ा रहा। बहू ने झाँककर पूछा—क्या हुआ ?

काका ढोला सुनने गये हैं!—निहाल ने अविश्वास से कहा—वे तो नही जाते थे।

जाकर बुला ले आओ। रात बढ रही है।—बहू ने कहा। और रोते बच्चे को दूध पिलाने लगी।

निहाल जब काका को लेकर लौटा, तो काका की देही तप रही थी।

हवा लग गयी है और कुछ नहीं।—डोडी ने छोटी खटिया पर अपनी निकली टाँगें समेट कर लेटते हुए कहा—रोटी रहने दे, आज जी नहीं चाहता।

निहाल खड़ा रहा। डोडी ने कहा—अरे, सोच तो, बेटा। मैंने ढोला कितने दिन बाद सुना है। उस दिन भैया की सुहाग रात को सुना था, या फिर आज

निहाल ने सुना और देखा, डोडी आँख मींचकर कुछ गुनगुनाने लगा था

६

शाम हो गयी थी। मौनी बाहर बैठा था। गदल ने गरम-गरम रोटी और आम की चटनी ले जाकर खाने को धर दी।

बहुत अच्छी बनी है।—मौनी ने खाते हुए कहा—बहुत अच्छी है।

गदल बैठ गयी। कहा—तुम एक ब्याह और क्यों नहीं कर लेते अपनी उमरि लायक ?

मौनी चौंका। कहा—एक की रोटी भी नहीं बनती।

नहीं।—गदल ने कहा सोचते होगे सोन बलाती हूँ, पर मरद का क्या ? मेरी भी तो ढलती उमरि है। जीते जी देख जाऊँगी तो ठीक है। न हो तो हुकूमत करने को तो एक मिल ही जायेगी।

मौनी हँसा। बोला—यों कह। हौस है तुझे लड़ने को कोई चाहिए।

खाना खाकर उठा, तो गदल हुक्का भरकर दे गयी और आप दीवार की ओट में बैठकर खाने लगी।

इतने में सुनायी दिया—अरे, इस बखत कहाँ चला ?

जरूरी काम है, मौनी।—उत्तर मिला। पेसकार साब ने बुलवाया है।

गदल ने पहचाना। उसी के गाँव का तो था, धोंद्या मैना का

चुंदा गिर्राज ग्वारिया। जरूर पेमकार की गाय को मराने की बात होगी।

अरे तो रात को जा रहा है ?—मौनी ने कहा—ले चिलम तो पीता जा।

आकर्षण ने रोका। गिर्राज बैठ गया। गदल ने दूसरी रोटी उठायी। कौर मुँह मे रखा।

तुमने सुना ?—गिर्राज ने कहा और दम खीचा।

क्या ?मौनी ने पूछा।

गदल का देवर डोडी मर गया।

गदल का मुँह रुक गया। जल्दी से लोटे के पानी के संग कौर निगला और सुनने लगी। कलेजा मुँह को आने लगा।

कैसे मर गया ?—मोनी ने कहा। वह तो भलाचंगा था !

ठड लग गयी। रात उघाडा रह गया।

गदल द्वार पर दिखायी दी। कहा—गिर्राज !

काकी !—गिर्राज ने कहा—सच। मरते बखत उसके मुँह मे तुम्हारा नाम कढा था, काकी ! बिचारा भला मानस था।

गदल स्तब्ध खडी रही।

गिर्राज चला गया।

गदल ने कहा—सुनते हो ?

क्या है री ?

मै जरा जाऊंगी।

कहाँ ?—वह आतंकित हुआ।

वही।

क्यो ?

देवर मर गया है न ?

देवर ! अब तो वह तेरा देवर नहीं।

गदल हंसी झनझनाती हुई हँसी—देवर तो मेरा अगले जनम मे

भी रहेगा। वही न मुझ से रुखाई दिखाता, तो क्या यह पाँव कटे बिना उस देहली से बाहर निकल सकते थे? उसने मुझसे मन फेरा, मैंने उससे। मैंने ऐसा बदला लिया उससे!

कहते-कहते वह कठोर हो गयी।

तू नहीं जा सकती!—मौनी ने कहा।

क्यों?—गदल ने कहा—तू रोकेगा? अरे, मेरे खाम पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और तू मुझे रोकनेवाला है कौन? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहूँगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में, तो जीभ कढ़वा लेती तेरी

अरी चल-चल!

मौनी ने हाथ पकड़कर उसे भीतर धकेल दिया और द्वार पर खाट डालकर लेटकर हुक्का पीने लगा।

गदल भीतर रोने लगी, परन्तु इतनी धीरे कि उसकी सिसकी तक मौनी नहीं सुन सका। आज गदल का मन बहा जा रहा था।

रात का तीसरा पहर बीत रहा था। मौनी की नाक बज रही थी। गदल ने पूरी शक्ति लगाकर छप्पर का कोना उठाया और साँपिन की तरह उसके नीचे से रेंगकर दूसरी ओर कूद गयी।

मौनी रह-रहकर तड़पता था। हिम्मत नहीं होती थी कि जाकर सीधे गाँव में हल्ला करे और लट्ठ के बल पर गदल को उठा लाये। मन करता, सुसरी की टाँगें तोड़ दे। दुल्लो ने व्यंग भी किया कि उसकी लुगाई भागकर नाक कटा गयी है, खून का-सा घूँट पीकर रह गया। गूजरों ने जब सुना, तो कहा—अरे बुढ़िया के लिए खून-खराबी करायेगा? और अभी तेरा उसने खरच ही क्या कराया है। दो जून रोटी खा गयी है, तो तुझे भी तो टिक्कड़ खिला कर ही गयी है?

मौनी का क्रोध भड़कता।

चोट्या का गिरवि सुना गया था।

जिस वक्त गदल पहुंची, पटेल बैठा था। निहाल ने कहा था—खबरदार! भीतर पाँव न धरियो! क्यों लौट आयी है?

पटेल चौंका था। बोला अब क्या लेने आयी है, बहू?

गदल बैठ गयी। कहा—जब छोटी थी तभी मेरा देवर लट्ठ बाँध मेरे खसम के साथ आया था। इसी के हाथ देखती रह गयी थी मैं तो। सोचा था, मरद है, इसकी छत्तर छाया में जी लूंगी। बताओ, पटेल, वह ही जब मेरे आदमी के मरने के बाद मुझे न रख सका, तो क्या करती? अरे मैं न रही, तो इनसे क्या हुआ? दो दिन में काका उठ गया न? इनके सहारे मैं रहती तो क्या होता?

पटेल ने कहा—पर तूने बेटा-बेटी की उमर न देखी, बहू!

ठीक है,—गदल ने कहा—उमर देखती कि इज्जत, यह कहो। मेरी देवर से रार थी, खतम हो गयी। ये बेटा हैं, मैंने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझपर दावा करो। पचायत में जवाब दूंगी। लेकिन बेटों ने बिरादरी के मुँह पर थूका, तब तुम सब कहाँ थे?

सो कब?—पटेल ने आश्चर्य से पूछा।

पटेल न कहेंगे तो कौन कहेगा? पच्चीस आदमी खिलाकर टाल दिया मेरे मरद के कारज में!

पर पगली यह तो सरकार का कानून था।

कानून था!—गदल हँसी—सारे जग में कानून चल रहा है, पटेल? दिन-दहाड़े भैंस खोलकर लायी जाती है। मेरे ही मरद पर कानून था? यों न कहोगे, बेटों ने सोचा, दूसरा अब क्या धरा है, क्यों पैसा बिगाड़ते हो? कायर कहीं के!

निहाल गरजा—कायर? हम कायर तू सिंघनी?

हाँ मैं सिंघनी!—गदल तड़पी—बोल तुझमें है हिम्मत?

बोल!—वह भी चिल्लाया।

जा, बिरादरी कारज में न्यौता दे काका के?—गदल ने कहा।

निहाल सकपका गया। बोला—पुलस...

गदल ने सीना ठोक कर कहा—बस ?

लुगाई बकती है।—पटेल ने कहा—गोली चलेगी, तो ?

गदल ने कहा—धरम-धुरन्दरो ने तो डुबा ही दी। सारी गुजरात ही डूब गयी, माधो। अब किसी का आसरा नही। कायर-ही कायर बसे है।

फिर अचानक कहा—मै करूं परबन्ध ?

तू ? —निहाल ने कहा।

हाँ, मै !—और उसकी आँखो मे पानी भर आया। कहा—वह मरते बखत मेरा नाम लेता गया है न तो उसका परबन्ध मै ही करूँगी।

मौनी ने आश्चर्य से सुना था गिर्राज ने ही बताया था कि कारज का जोरदार इंतजाम है। गदल ने दरोगा को रिश्वत दी है। वह इधर आयगा ही नही। गदल बड़ा इन्तजाम कर रही है लोग कहते है, उसे अपने मरद का इतना गम नही हुआ था, जितना अब लगता है।

गिर्राज तो चला गया था, पर मौनी मे विष भर गया था। उसने उठते हुए कहा—तो गदल ! तेरी भी मन की होने दू, तो मौनी नही। दरोगा का मुह बन्द करा, पर उससे भी बड़ा एक दरोगा है। मै कस्बे मे बड़े दरोगा से शिकायत करूँगी।

कारज हो रहा था। पांते बैठती जीमती, उठ जाती और कढ़ाव मे पुए उतरते।

बाहर मरद इन्तजाम कर रहे थे, खिला रहे थे। निहाल और नरायन ने लड़ाई मे महगा नाज बेचकर जो बर्तनो मे नोटो की चांदी बनाकर डाला था, वह निकली और बोहरे का कर्ज चढ़ा। पर गाँव मे लोगो ने कहा—गदल का ही बूता था। बेटे तो हार बैठे थे। कानून क्या बिरादरी से ऊपर है ?

गदल थक गई थी औरतो मे बैठी थी। अचानक द्वार मे सिपाही सा दीखा। बाहर आ गयी। निहाल सिर झुकाये खड़ा था।

क्या बात है, दीवान जी ?—गदल ने बढकर पूछा।

स्त्री का बढकर पूछना देख दीवान सकपका गया।

निहाल ने कहा—कहते है कारज रोक दो।

सो कैसे ?—गदल चौकी।

दरोगा जी ने कहा है।—दीवानजी ने नम्र उत्तर दिया।

क्यो ? उससे पूछकर ही तो किया जा रहा है।—उसका स्पष्ट संकेत था कि रिश्वत दी जा चुकी है।

दीवान ने कहा—जानता हूँ, दरोगा जी तो मेल मुलाकात मानते है, पर किसी ने बडे दरोगा जी के पास शिकायत पहुँचायी है, दरोगा जी को आना ही पडेगा। इसी से उन्होने कहला भेजा है कि भीड छाट दो। वर्ना कानूनी कार्यवाई करनी ही पडेगी।

क्षण भर गदल ने सोचा। कौन होगा वह ? समझ नही सकी। बोली दरोगाजी ने पहले नही सोचा था यह सब, अब बिरादरी को उठा दें ? दीवान जी, तुम भी बैठकर पत्तल परोसवा लो। होगी सो देखी जायेगी। हम खबर भेज देंगे, दरोगा आते ही क्यो है ? वे तो राजा है।

दीवानजी ने कहा— सरकारी नौकरी है। चली न जायेगी ? आना ही होगा उन्हे।

तो आने दो !—गदल ने चुभते स्वर से कहा।—आदमी का वजन वजन एक बार का होता है। हम बिरादरी को नही उठा सकते।

नारायन घबराया। दीवानजी ने कहा—सब गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। समझी ! राज से टक्कर लेने की कोशिश न करो।

अरे तो राज क्या बिरादरी से ऊपर है ? गदल ने तमक कर कहा—राज के पीसे तो आज तक पिसे है, पर राज के लिए धरम नही छोड देंगे, सुन लो ! तुम धरम छीन लो, तो हमें जीना हराम है !

गदल पाँव धमाके से धरती चली गयी।

तीन पांते और उठ गयी अंतिम पात थी।

निहाल ने अँधेरे मे देखकर कहा—नरायन, जल्दी कर। एक पांत

बची हैं न ?

गदल ने छप्पर की छाया मे से कहा —निहाल !

निहाल गया।

डरता है ?—गदल ने पूछा।

सूखे होठो पर जीभ फेरकर उसने कहा—नही।

मेरी कोख की लाज करनी हो तो तुझे।—गदल ने कहा—तेरे काका ने तुझको बेटा समझकर अपना दूसरा ब्याह नामंजूर कर दिया था। याद रखना, उसके गोर कोई नही।

निहाल ने सिर झुका लिया।

भागा हुआ एक लड़का आया।

दादी !—वह चिल्लाया।

क्या है रे ?—गदल ने सशंक होकर देखा।

पुलिस हथियारबन्द होकर आ रही है।

निहाल ने गदल की ओर रहस्य-भरी दृष्टि से देखा।

गदल ने कहा—पांत उठने मे ज्यादा देर नही है।

लेकिन वे कब मानेगे ?

उन्हे रोकना होगा।

उनके पास बन्दूकें हैं।

बन्दूके हमारे पास भी हैं, निहाल।- गदल ने कहा—गांव मे बन्दूको की क्या कमी ?

पर हम फिर क्या खायेंगे !

जो भगवान देगा।

बाहर पुलिस की गाडी का भोपू बजा। निहाल आगे बढ़ा। दरोगा ने उतर कर कहा—यहां दावत हो रही है ?

निहाल भौचक रह गया। जिस आदमी ने रिश्वत ली थी, अब वह पहचान भी नही रहा था !

हां। हो रही है।—उसने क्रुद्ध स्वर में कहा।

पच्चीस आदमी से ऊपर है ?

गिनकर हम नही लिखाते, दरोगा जा।

मगर तुम कानून तो नही तोड सकते ?

कानून राज का कल का है, मगर बिरादरी का कानून सदा का है, हमे राज नही लेना है, बिरादरी से काम है।

तो मै गिरफ्तारी करूंगा।

गदल ने पुकारा—निहाल !

निहाल भीतर गया !

गदल ने कहा—पगत खत्म होने तक इन्हे रोकना ही होगा !

फिर ?

फिर सब को पीछे से निकाल देंगे। अगर कोई पकडा गया, तो बिरादरी क्या कहेगी ?

पर ये वैसे न रुकेंगे। गोली चलायेंगे।

तू न डर। छत पर नरायण चार आदमियो के साथ बंदूके लिये बैठा है।

निहाल कॉप उठा। उसने घबराये हुए स्वर से समझाने की कोशिश की—हमारी टोपीदार है, उनकी राइफल है।

कुछ भी हो, पंगत उतर जायेगी।

और फिर ?

तुम सब भागना।

हठात् लालटेन बुझ गयी।

धायँ-धायँ की आवाज आयी। गोलियाँ अंधकार में चलने लगी।

गदल ने चिल्ला कर कहा—सौगध है, खाकर उठना।

पर सब को जल्दी की फिकर थी।

बाहर धायँ-धायँ हो रही थी। कोई चिल्ला कर गिरा।

पांत पीछे से निकलने लगी।

जब सब चले गये, गदल ऊपर चढी। निहाल से कहा—बेटा !

उसके स्वर की अखण्ड ममता सुन कर निहाल के रोगटे उस हलचल

मे भी खडे हो गये। इससे पहले कि वह उत्तर दे, गदल ने कहा—तुझे मेरी कोख को सौगन्ध है। नरायन का और बहू बच्चो को लेकर निकल जा पीछे से।

और तू ?

मेरी फिकर छोड ! मै देख रही हूं तेरा काका मुझे बुला रहा है।

निहाल ने बहस नही की। गदल ने एक बन्दूक वाले से भरी बन्दूक लेकर कहा—चले जाओ सब, निकल जाओ।

संतान के मोह से जकडे हुए युवको को आपत्ति ने अधकार मे विलीन कर दिया।

गदल ने घोडा दबाया। कोई चिल्ला कर गिरा। वह हसी। विकराल हास्य उस अधकार मे गूज उठा।

दारोगा ने सुना, तो चौका। औरत ! मरद कहा गये ! उसके कुछ सिपाहियो ने पीछे से घेरा डाला और ऊपर चढ गये। गोली चलायी। गदल के पेट मे लगी।

युद्ध समाप्त हो गया। गदल रक्त मे भीगी हुई पडी थी। पुलिस के जवान इकट्ठे हो गये।

दरोगा ने पूछा—यहाँ तो कोई नही ?

हुजूर ! एक सिपाही ने कहा—यह औरत है।

दरोगा आगे बढ गया। उसने देखा और पूछा—तू कौन है ?

गदल मुस्करायी और धीरे से कहा—कारज हो गया, दरोगा जी। आत्मा को शाति मिल गई।

दरोगा ने झल्ला कर कहा—पर तू है कौन ?

गदल ने और भी क्षीण स्वर से कहा—जो एक दिन अकेला न रह सका, उसी की······

और सिर लुढक गया। उसके होठो पर मुस्कराहट ऐसी दिखाई दे रही थी, जैसे अब पुराने अधकार मे जला कर लाई हुई...पहले की बुझी लालटेन......

मार्कण्डेय

एक दिन की डायरी

मन भी अजीब है—कभी-कभी भागता है, खूब भागता है—भड़के हुए बैल की तरह, मनमाना, स्वच्छंद, और जो उसे पकड़ने की कोशिश करो, बाँधने की सोचो, तो जाने कैसे, कहाँ से निकल कर फिर दूर—बहुत दूर हो रहता है।

और कभी-कभी तो जी में आता है, किसी ततैया के छत्ते के ठीक नीचे खड़े हो कर उसे छेड़े और खड़े रहे। लेकिन, न जाने क्यों लगता है कि बींधने से सारा शरीर बेचैन हो उठा है, और बरफ-सी शीतल और सुकुमार उंगलियाँ धीरे धीरे रेंग कर उस दर्द को खींच रही हैं। स्नेह के आँसुओं से भीग जाने को जी होता है—खूब उघर कर, नंगा हो कर।

कभी किसी सरोवर के विश्रांत जल में डूबने से उठी लहरों का गोला देखने को मन होता है, और लगता है, जैसे अथाह गहराई में खड़े होने की ताकत हो आयी हो। तैरना आ गया हो, दूर के चुने हुए कमल तोड़ लाने का पौरुष जाग उठा हो।

ऐसे भी अवसर जीवन में आते हैं, जब भूख लगी हो, और खाना न मिले, नींद लगी हो, पर सो न सकें, हम मन। चाहें, बहुत जोर से चीख पड़ना चाहें, मन भर कर न सकें, और जब स्टोव जला कर चाय

बनाने की सोचे, तो उंगलियां जल जाएं, और मां की याद हो आए।

—मिट्टी के, गोबर से लिपे, घर में मीठे तेल का दीया जल उठे, और बांस की साफ-सुथरी चारपाई पर वहां सफेद बिस्तर बिछ जाए, फिर मीठी लोरियों में—मां की छाती में डूब जाने को, खो जाने को जी कहे। दूध-भात की कटोरियां देख कर घर छोड़ कर भाग जाने को हो, पर दहलीज में बैठे पापा की डांट से निगलना ही पड़े।

लेकिन इसके बाद भी बिस्तर में कांटे उग आएं, तकिया जलने लगे, और खटमलों की एक सेना सारी देह पर घेरा डाल दे, तो फिर टहलने को—दूर-दूर तक घूम आने को, पीछे कई वर्ष के कैलेंडर छू आने को तबीयत मचलती है। भूली-बिसरी बातों की दूकान सजा देने को जी होने लगता है, जिसमें मीठी गोलियां, मालपुओं से ले कर पूरियों और चटनियों तक का मजा लेने को तबीयत आती है। बात ही बात, और कुछ नहीं क्योंकि बात से पेट भरता नहीं—संतोष हो आता है, लेकिन जो बात करने वाला ही न हो पास, और कोई मिले भी न रात के इतने बीते समय में, तो कभी-कभी डायरी लिखने की इच्छा होती है—उस दिन की डायरी, जब कालेज से लौटते ही मां ने चूल्हे से चाय का पानी उतारते-उतारते किंचित् मुस्करा कर कहा था, "सुना, तू लेखक हो रहा है आजकल! राम और कृष्ण ही को सुना था, जिनकी कथाएं लिखी जाती हैं, और तू लड़कियों पर कहानी लिखता है?"

काटो तो खून नहीं, "यह क्या कह रही हो, मां! किसने बताया तुमसे यह सब?"

और वह हँस पड़ी थी, "पागल कहीं के! अभी-अभी राय बाबू की बहू आयी थी, उनके मकान के आधे हिस्से में जो वकील रहता था न, वह चला गया है, और उसमें सरकारी इंजीनियर आ कर रहने लगे हैं। उनकी कोई लड़की है—सुशीला, वह तेरे साथ पढ़ती है?"

"धत् तेरे की मां, क्या बात कर दी तुमने आते-आते, अरे वह भी कोई लड़की है, देहाती, भुच्च। अरे, उसे तो ठीक से बोली भी बाधर्म।

नही आती—मैं उस पर कहानी लिखूगा ।"

—और मन की परतें जैसे सूखे कपास के बीज की तरह उखड गयी हो। मा की बात, हाथ की फाइल, केतली, प्लेट-प्याले, सडकें, इमारतें—सब पीछे—छह महीने पीछे।

"जरा एक बात सुनना भाई! अलग की है।" मेरे एक साथी ने मौरपखा की छाया मे खीच कर मुझसे कहा था।

—मुझे दुख हुआ था—अचम्भा हुआ था। आखिर तुमने अपने को पहचान लिया, लेकिन फिर कुछ सतोष भी हुआ था, कि मेरी कहानी मे तुम्हारी तसवीर पहचानी गयी और तुम्हारे ही द्वारा। 'लेकिन म कहानी की पात्र नही हूँ।" मित्र ने बताया, तुम दुखी हो कर कह रही थी। फिर एक प्रवसाद का कुहासा घिर आया था मन पर, और सावन की हल्की फुही में मेरे मन के रेशे उड गये थे।

—मैं उससे बोलूगा—जरूर बोलूँगा। कहूगा, कि मुझे वह क्षमा कर दे, गलती से यह सब हो गया, और...पर माँ ने चाय देते हुए कहा था, 'अच्छी लडकिया ऐसे ही रहती हैं। राय बाबू की स्त्री ने तुम्हे शाम को घर बुलाया है। कुछ खा-पी कर मिल आना।" पर मेरा मन उडा जा रहा था। मैं झूठ बोलूगा—यह कहूँगा कि गलती से उसकी तसवीर उभर आयी है, और यदि किसी के मन में वैसी ही तसवीर बसती हो, वही शोभा हो, वही तसल्ली हो उसके मन की, तो कोई क्या करे? क्या किसी को चाहना, किसी से स्नेह करना दोष है, किसी को मन के पास देखना बुरा है! फिर मेरे मन का वह दबा हुआ तूफान उभर गया था, जब मैंने उसके लिए पत्र लिखे थे—

'तुम्हें इस तरह तकलीफ देना मुझे अभीष्ट नही था। सुशीला! मैं-लज्जित हूँ तुम मुझे क्षमा कर दोगी। फिर नही लिखूँगा। अपनी आत्मा को मार दूँगा, अपनी आवाज का गला घोट दूँगा। बस, तुम बुरा न मानो।" पर वह सब, जैसे बासी गुलाब की पखुड़ियों-सा किसी अंधड़ मे झड गया था—वे सारे पत्र आँच मे तप कर राख हो गये थे—

लिफाफो मे कस कर घुट गये थे ।

फिर तुम मेरे लिए असंभव सी हो गयी थी—आवाज से बाहर—पहुच से बाहर, जैसे हवा हो ही न तुम्हारी अगल-बगल ।—राय बाबू की स्त्री ने तुम्हे घर पर बुलाया है कुछ खा-पी कर मिल आना । मा की बात याद आ गयी थी ।

और मै गया, तो तुम्ही पहले मिली थी—जैसे अभी-अभी सो कर उठी हो—रूखे रूखे से बिखरे बाल और बहुत शोत-हीन आखे, जैसे किसी भयानक तूफान को आते देख कर भी कोई साहसी मल्लाह अपनी किश्ती का पतवार ढीली किये बैठा हो—डूबना जो नही है उसे, और उसी तरह तुमने कहा था—

—राय बाबू के यहाँ जा रहे थे, चलो अच्छा हुआ, जो मै मिल गयी । मैने ही बुलवाया था, तुम्हे । पर म बोल नही सका था । क्योकि जिसे पहाड मान कर चढाई की इच्छा ही मर गयी थी, वह मैदान से भी ज्यादा समतल थी, और उसने अपने ड्राइग रूम का दरवाजा खोल दिया था । उसी के भीतर बायी ओर एक छोटे से कमरे मे बैठे थे हम । उसके पीछे का कमरा था यह, पर बहुत सपाट—एक रैक मे थोडी सी किताबे, एक तख्त और एक तिपाई, सब पर सफेद कपडा, कही कोई सजावट नही—कोई बनावट नही ।

"लडकियो से डरते हो !" उसने मुझे तख्त पर बैठा कर कहा था ।

"नहीं तो !" मुझे जरा सहारा मिला ।

वह जरा हँसी भी तो नही । अपने को बनाया सँवारा भी नही । वैसे ही, जैसे कोई विचारक लंबे चिंतन के बाद अपने किसी पर वाले से—किसी आत्मीय से—बडे गंभीर रूप मे, काम की बाते करता जा रहा हो ।

जी मे आया, कहूँ, रात दो बिल्लिया लडते लडते बिस्तर पर कूद पडी, कौए ने मुन्ना के दूध-भात की कटोरी उठायी, तो छत पर डाल दिया । गनीमत समझो, कि मिल गयी, वर्ना मा अमरीका के सैनिक

सहायता लेने आ रही थी—क्या होता फिर तुम्हारे घर का, पर मेरे घर में चूहों का बुरा हाल है। दिखाई पड़ा नहीं कि पिता जी को सदमा हुआ राशन की कमी का—तुम्हारे पास मूसादानी होगी ?

पर बात के सिलसिले का ध्यान कर, चुप रह गया। क्या कहता, जो था, लगा, वह सब प्रेत का स्वप्न था। सत्य तो और कुछ है।

"तो बोलो कुछ। या लिख कर ही व्यक्त करते हो, अपने को।"

"नहीं तो! पर क्या कहूं, कुछ समझ में नहीं आता।"

"कोई नयी कहानी नहीं लिखी इधर ?"

"लिख नहीं पाया।"

"क्यों!"

मैं बोल नहीं सका।

"इसलिए कि कोई मन की लड़की नहीं मिलती।"

"हां ऐसा ही मानो।" मैंने बहुत साहस करके उदास मन में कहा।

"तो लड़कियों के लिए लिखते हो ?"

"नहीं तो।"

"अपने लिए ?"

"नहीं।"

"पढ़ने वालों के लिए ?"

"कह नहीं सकता।" मुझे जैसे कोई छेड़ रहा हो, इच्छा हुई, कहूं, बहुत हो गया। अब चलूं पर उसने बात बदल दी।

"बहुत अच्छा लिखते हो, मेरी मां को तुम्हारी कहानियां बहुत पसंद हैं। तुम जानते हो न, कि वे यूरोपियन हैं हिंदी कम समझती हैं। मैं ही प्राय पढ़ कर समझाती हूं, उन्हें।" और उसने मेरी कई प्रकाशित कहानियों की बात कह डाली। बड़े ही प्यारे सुहृद की तरह बोलती थी, जैसे उसे बड़ी आशा हो मुझ से, और सफलता के लिए आश्वासन भी हो मन को।

फिर जैसे कुछ अटकते हुए उसने कहा, "आज क्या बात। पूछने वाली

थी, तुम स। सोचा था कि, एक लिस्ट बना कर बुलाऊ पर सब जैसे भूल रही हूँ। एक दिन 'राम भण्डार' गयी गा क सान, तो सोचा तुम्हारे लिए रसगुल्ले खरदू, और एक दिन ..हा. .या. नही पडता ठीक ..हाँ. .हा .पिछली शरद् पूनो ही ।। तो—जब मा, पापा के साथ मिर्जापुर म थी—तुम जानते हा न, वे सरकारी इजीनियर हैं, तो सोचा, बहुत दूर तक घूम आऊँ, तुम्हे भी बुला लूँ। साथ रहेगे, तो बाते होती रहेगी—उन दिनो तुम्हारी कई कहानिया पढी थी। अच्छा, तो जाने भी दो इन सब को। आज तो देर हो गयी है—मा से कहा भी न होगा तुमने, वर्ना तुम्हे खाना बना कर खिलाती। मुझे बडा अच्छा लगता हे खाना बनाना।' इस तरह बहुत देर तक वह बोलती रही थी, फिर म चला तो कहने लगी ,आ मिलना, तो लो ाना, कोई कहानी लिखना तो बताना, म सुनूगी।'

मै सम्पूर्ण बिखर गया था उस दिन। समझ ही न सका कि कहा गया था। लौटा, तो कोई लालसा नजदीक न थी। वेग मन मे नही था रात को दिन, और दिन को रात समझने की बात न थी—यहा तक कि साँस का अन्दाज लेने के लिए कई बार सीने की धडकन का सहारा लेना पडा। सोचा, जी रहा हूँ तो कुछ सोचता क्यो नही—कुछ हवाई किले क्यो नही बना डालता—कुछ रगीन आसमान क्यो नही रचता, पर कुछ भी वैसा न हुआ। रात म नीद भी खूब आयी। सुबह उठा, तो पिछला भूल गया था।

धीरे धीरे मन वैसा हो गया, जैसे किसी मनोरम जगल के झरने के पास बसने वाले बूढे का हो जाता है। कौन सा ऐसा सगीत है उसमे, जो शहर के बाबू कान लगा कर सुनते है, समय बर्बाद करते है और कडी धूप मे घर-द्वार छोड कर यहाँ आते है।

कभी कभी किताब तक लाद देता उसके रिक्शे पर "इसे लेते जाओ! मे गोष्ठी मे जाऊगा, तो लौटने मे देर होगी। शाम को आऊंगा, तो ले लूगा।" कभी कक्षा मे निवृत्त होकर वह सारे रास्ते म

आ जाती, तो खड़ी रहती। फिर जब सब निकलने लगते, तो कहती 'मै घर जाऊँगी, कोई काम हो, तो दे दो।"

मै कहता,"जाओ !" तो वह चली जाती, न चाहती, न कहती कुछ। कभी कुछ पैसे देती और कहती 'शाम को आना तो कोई चीज लेते आना—तरकारी, टोस्ट, बटर आदि।" और भी मै कटता गया था—ऐसा नही कि उसका काम बुरा लगता था यह तो मन ही की बात थी, पर वह गतिविधि हो गयी थी मूर्ति की तरह निर्जीव—निर्विकार, इसलिए मै राह बचा जाता था, कम मिलना चाहता था।

धीरे धीरे समय निकल गया पीछे और हमने उसका दोष पर मन नही दिया, जैसे इसे तो जाना ही था। मौसम भी अच्छे बुरे आये, पर हमें वैसा ही छोड गये। मुझे किसी चीज मे खास रुचि नही रही। बहुत सोचा, तो एक कहानी बनी। एक साथी संपादक थे, मांगते थे, तो उनकी पत्रिका का पेट तो भरना ही था इसलिए लिखा, पर लगा, जैसे यह काम मैने पहले कभी नही किया है।

किताबें भी फीकी-सी लगती थी—यद्यपि सारा कितना नया इकट्ठा हो गया है पढने को, और बुकस्टाल पर भी बहुत सारा खरीदना बच रहा है, पर क्या ऐसा होता है इन किताबों मे—कथाओ मे? स्त्री का गलत चरित्र है सर्वत्र, मन का छीना हुआ। इन्सान भी क्या है? और यह कोर्स की किताबें! प्रकाशकों और लेखकों की भरती की सामग्री! कुछ नही है खास इनमे—समय मे, जीवन मे कोई भी एक बिन्दु ऐसा नही है, जो भ्रम न हो, खिलवाड न हो।

उन्ही दिनो वह पत्रिका निकली थी। मैने कहानी देखी भी नही। छपी, भूल सो चला था, पर वह मिल गयी। रिक्शा रुकवा कर अपने साथ बिठा लिया।

'मिले क्यो नही? बुरा मान गये, ऊब गये मेरे कामो से।" उनके तन मे पहली बार गर्मी देखी मैने—प्रश्न मे हल्की-सी सिहरन, और जी में आया, उसकी गोद मे सिर डाल दूं और कहूं, 'कुछ समझ

में नही आता, क्या करू, कैसे रहू, क्या मतलब है आदमी का, उसके जीने का, रहने का, सास लेने का ?" पर वह बोलने लगी थी, "क्यो लिखी ऐसी कहानी तुमने, यह ठीक है कि कादम्बरी की महाश्वेता का आदर्श है तुम्हारी रुचि मे, पर तुम नल के समान निर्मोही हो ? सिद्धार्थ के समान त्यागी हो ? मै फिर पहचानती हू, अपने को वहा। मै उदासी हूँ—यहा न मतलब है तुम्हारा ?"

जी मे आया चिल्ला पड़ूँ। कहू, छोड़ दो मुझे, क्यो बाध रही हो इतनी बेरहमी से ? मेरा मन टूटने के करीब है, बिखरने के पास है, बेडिया न डालो इनमे । पर मै दबा बैठा रहा, कुछ भी न कह सका।

फिर कहने लगी "देख कर रास्ता बचाते हो, और बन रहे हो गौतम ? जैसे वह झिझक-सी रही हो।" शाम को आओगे घर ?

नही।

क्यो, अब तो गोष्ठिया भी छोड दी है, इधर !

तुम्हे यह सब कैसे मालूम ?

जैसे भी हो, पर काम क्या है जो नही आ सकोगे ? और फिर चलते चलते उसने कहा, तो आना, मा ने कई बार पूछा है, और घूमने भी चलेंगे, आज बडा मन है।

उस दिन फिर मै नही गया, तो फिर जाना न हुआ। गर्मी आ गयी थी। हवा से वैसे ही देह जलने लगी थी, उन्ही मे परीक्षाएँ हुई, और हम कहाँ से कहाँ हो रहे। बहुत लू आयी उस साल। आदमी भुन के रह गया, खडे खडे पेड सूख गये, और कुओ में पानी न रहा। जानवर भूखो मरने लगे। इसी बीच पचास वर्ष के रामू दादा, पाँच सौ रुपये में एक बहू लाये। गाँव मे बड़ी बात रही, कि लड़की का बाप खाए बिना मर रहा था। पेट कही धरम बचने देता है ? बेचारे ने जान बूझ कर थोड़े ही लडकी बेची। दुलारी के बाप के ऊपर तो आसमान फट पडा—रोता चीखता फिरा, पर बिरादरी में सुनवाई न हुई। क्यो

उमने उस लफंगे रिश्तेदार को घर में टिकाया। आज की बात थोड़ी ही थी। वर्षों से वह शहर से आता, तो महीनों रह जाता। कहते है, रिश्ता चलता है और इधर तो हारे-गाढ़े मदद भी कर देता था, पैसे भी दे जाता था, पर दुलारी को इस तरह उड़ा ले जाने पर बिरादरी भला कैसे मानती। भोज-भात, डाँड-बाँध कुछ तो होगा ही उस पर। उस समय मैं गाँव में था। सोचता, यह सब क्या हो रहा है। बहुत जी अकुलाया, बहुत ऊबा, पर मैं शहर न आया।

माँ ने बुलाया, पत्र डाला, अन्त में तार दिया पर मैं न गया। सुशीला की शादी हो गयी, वह चली गयी, तुम्हें पूछती थी। यह सब भी लिखा, पर मैं न जा सका। जी ऊबता, तो मुन्नी के लिए बाजरे के डंठल से बंदूक बना देता, पर किताबें देख कर बुखार सा लगता। बहुत जोर मारता, तो किसी उपन्यास या एकाध किस्सा पढ़ कर मन खट्टा हो जाता, और लिखना तो छूट ही गया हमेशा के लिए।

धीरे धीरे बरसात के कई बादल उमड़-घुमड़ कर बरसे, पर धरती प्यासी ही रही, और पानी चाहिए था उसे। और मैं गाँव से शहर जाने को हुआ। मुन्नी बहुत रोयी, भाभी ने दही गुड़ मुँह में लगाया, और लढ़िया पर बैठा दिया। स्टेशन पहुँचा, तो गाड़ी में बहुत भीड़ थी। इधर उधर भटका, सहसा पद्मा दीख गयी—मामू की लड़की होती थी मेरे। बचपन में साथ खेले थे। लड़ती भी, बात नोच लेती थी, परेशान करती थी। पर यह क्या हो गयी है, जैसे किसी अकेले मल्लाह की फटी बाँसुरी-सी। बहुत दब कर किसी तरह नमस्कार किया, तो बगल देखकर उसने सिर का कपड़ा और खींच लिया। जाना, कि उसके पति देवता के साथ भेंट हुई, तो अनमने से मिले, फिर बताया तो कुछ तसल्ली हुई। ब्याह हो गया था पद्मा का, पहले भी सुना था, पर देखा तो फिर सोचने लगा—ब्याही पद्मा और ब्याही सुशीला, फिर सारी ब्याही लड़कियाँ, फिर भाभी की स्नेहार्द्र आँखें तेजी से पीछे छूटने वाले गाँव के ऊपर उभर आयी थीं। भाभी भी तो एक ब्याही लड़की चाहती

है। नन्हे-नन्हे से हाथ हो उसके—कमल की पखुड़ियों की तरह। सुबह के डूबते हुए तारों जैसी आखें और आकाश गंगा जैसा घूंघट। बेतहाशा हँसी आयी थी, यह सब सोच कर। पर शहर आ गया और मैं गाडी से उतर गया था।

कुछ भी मन का नहीं दीखा। पढाई में रस नहीं, मां रिसर्च के लिए बिगडी, पिता ने मुँह फुलाया, पर मुझसे हुआ नहीं। अन्त में मास्टरी ले ली, एक स्कूल में छोटे बच्चों को पढ़ाता, तो मन कुछ बहल सा जाता। इसी बीच शरद् आया और बीत गया। नीम की टहनियों पर चाँद को कितनी बार बैठे देखा, पर मन अटका नहीं उस ओर। पद्मा का पीला चेहरा प्रतीत हो उठा ब्याह का—एक नवदीजी की बात सोचता रहा किसी बड़े पैमाने पर—ब्याह पर। मशीन की तरह चलने लगा था, कि एक दिन स्कूल के बाद भारी तूफान आया—पेड़ उखड़ गये, बिजली के खंभे गिर पड़े और पुराने मकान ढह गये कितने। स्कूल के बरामदे में देखता, कि कैसे चलूँ घर। बत्तो की बस गयी, तो फिर लौटी ही नहीं। क्या करूँ, कैसे पहुँचूँ। पर रात तक तूफान नहीं गया। दस बजे के करीब भीगता भागता चल पड़ा। अंधेरा घना था, पर पानी थमा था—एकाएक बिजली चमकी और जोरों की गड़-गड़ाहट हुई। फिर बड़ी बड़ी बूँदें पडने लगी। भाग कर बगल वाले मकान में घुस गया, पहचाना, तो सदमा हुआ—सुशीला का मकान। तब तक खिड़की से कोई चेहरा, मोमबत्ती की रोशनी में झाँका, और दरवाजा खुला।

"कौन ?"

जी में आया, अभी खैरियत है, फिर जैसे सैकड़ों मन ओले गिर पड़ें हो एक साथ। और पीछे से मोमबत्तियों की रोशनी में दो परछाइयाँ हिली।

"यह तो मैं हूँ ?"

"तुम ! इतनी रात गये।" सुशील डरी नहीं थी, पर घबराहट

थी आवाज में। बनाया सब तो अन्दर जाना हुआ, कपडे बदलते हुए और उसी ड्राइंग-रूम में बैठना हुआ। एक बार पद्मा का चेहरा आँखो मे नाचा, पर सुशीला तो वैसी ही है। निश्छल अहेरी भी पुनलिया, जैसे किसी काजल की कोठरी से लौटा हुआ कोई बे दाग योद्धा। मन के किसी कोने पर किवाड नही।

"अच्छा हुआ, जो भेंट हो गयी वर्ना बुलाने वाली थी, खाना लाती हूँ।"

मेरे खाते समय वह बैठी, आचल से मोमबती को हवा से बचाती रही।

"बहुत मन करता था, तुमसे बात करने को।"

"कैसी हो ? दुबली लगती हो पहले से।"

हा शादी हुई न मेरी, ससुराल से आई हूँ, पर तुम्हे क्या पता होगा ?"

"मा ने बताया था।"

"कब ?"

' उसी समय।"

"तो तू आया क्यो नही ?"

' मन नही हुआ।"

"अच्छा ही किया। क्या करने आता, बडी गर्मी थी।"

"मन कैसा है ?"

"बड़ा प्रसन्न, मैं दुखी ही कब थी ? अच्छी शादी है—भले है लोग।"

"पर शादी के बाद ....लड़किया. . . "

"रहे जैसे तैसे—अपने जैसा देखा दुनिया को और तेरे लिखने पढने का ?" उसकी आवाज थम गयी थी।

"नही लिख पाया तब से, अब तो भूल भी रहा हूँ।"

"हा उस दिन तू नही लौटा तो......" वह कह ही रही था, कि

जोर का झोंका आया औ मोमबत्ती बुझ गयी। "मैंने समझ लिया था कि .." उसका गला भर आया था। जैसे वह बोल न पाती हो, और मेरे हाथ उसके हाथो मे आ गये थे। फिर सहसा बिजली काँधी, मकान के दरवाजे खडखडा उठे—और मेरे हाथों पर दो गरम बूंद, जैसे आकाश से चू पडी हो। मै चौक गया।

"हा, तू डर रहा है, बत्ती जला दू ?" और किसी तरह उसने रोशनी कर दी।

"तू लिखा कर, वर्ना मुझे पाप का बोध होता है। क्यों अपने को मारता है, मै उदासी हूँ, इसीलिए न। पहले तो तू ऐसा नही रहता था।" और उसका गला फिर से भर आया।" पर तू तो आया ही नही उस दिन ..वर्ना. " वह रुक गयी, जैसे दबा गयी हो अपने को। फिर चलने लगा' तो कहने लगी—

'तू शादी करले तो अच्छा रहे, देखी नही कोई लडकी इधर. "

"नही देख पाया।"

"अच्छा देख मै किसी दिन घर आऊँगी, तो मा से कहूगी। लेकिन तुम आना, कुछ लिखना, तो सुनाना।"

मील भर का रास्ता, जैसे कुछ कदमो मे बंध गया। बहुत सारा पास होने पर भी मन बँधा ही रहा। केवल यह सयोग ही प्रधान हो गया उस समय। पद्मा याद आयी, पर सुशीला ने उसे सीमित कर दिया। वह तो कुछ खुली ही थी—सुबह के कमल के समान। कितनी खुश थी, कुछ बोलने के रुख पर थी, तू शादी कर ले...देखी कोई लडकी. .मै सोचता रहा।

रात ग्यारह बजे घर पहुँचा, तो मा ने बेचैनी के साथ दरवाजा खोलकर डाँट बतायी। खाने के पहले ही जैसे किसी बोझ को उतारने के लिए कहने लगी—

"सुना तुमने ?"

"कोई घर गिर गया क्या ?"

"हा, वही समझो।" आवाज में दुख था उनकी।

वह जो लड़की सुशीला थी न, राय बाबू के पड़ोस वाली—तुम्हारी साथी, इसी साल शादी हुई थी—जो मैंने लिखा था कि तुम्हे पूछती है। पर भगवान ही बिगड़ गया देचारी पर। उसका आदमी तीन चार दिन हुए उसे यहाँ छोड़ गया। कहता था, कि वह ऐसी लड़की घर मे नही रखता। जब से गयी, उससे बोलती तक नही थी। परायी सी बनी रही। पहले तो लोग न बोले, पर बाद में उसके पति ने छिप कर उसकी डायरी देखी, तो उसमे एक ही दिन की डायरी लिखी थी—सारा राज उसी से खुला बेचारी का। शायद किसी लड़के से वह प्रेम करती थी। राय बाबू की बहू कहती थी कि उन्होंने उसे पढ़ा तो आसू आ गये उनके। शायद किसी दिन उस लड़के को बुलवाया था, बाजार से सुहाग की साड़ी मँगा कर पहनी थी, शृंगार किया था, उस दिन पहली बार यह सब लिखा था। वे बता रही थी कि उस दिन वह साथी नही आया। किसी बात से उदास रहता थ। यही सब, जाने क्या क्या लिखा था।"

मैं अवाक् था—जैसे वहा न रहा होऊ। और माँ हवा से बोल रही हो।

पर एकाएक बात का सिलसिला टूटते ही सुशील के घर मेरे हाथो पर टपकी दो गरम पानी की बुंदे जल उठी, जैसे किसी ने लोहे की गर्म सलाख रख दी हो। मैंने उस हाथ को दूसरे हाथ से दबा लिया, पर मेरी नींद उड़ गयी थी। बाहर ओले गिरे थे, पर हवा चल रही थी।पद्मा का चेहरा बेबसी के आसुओ से धुल गया था। पर मुन्ना नही था वर्ना बाजरे से पालकी बना देता उसे इस रात…।

सत्येन्द्र शरत्

एक्सरे

दादर ब्रिज से गुजरते हुए शैवाल को सहसा, बरबस पीछे हटाया हुआ एक खयाल आ गया और बुरी तरह खांस कर ढेर-सारा पीला कफ उगलते हुए उसने बहुत तीव्रता से यह महसूस किया कि अब ऐसा और अधिक नही चल सकता। अपने स्वास्थ्य के प्रति की गयी यह उपेक्षा उसे डस कर सदैव के लिए मिटा देगी, और उसके बडा बनने तथा समूचे विश्व में नही, तो कम से कम, भारतवर्ष-भर मे अपनी ख्याति फैलाने की समस्त महत्वाकांक्षाएँ उसके मन मे ही रह जाएँगी। माना कि इस समय उसकी आर्थिक स्थिति ऐसी नही कि वह इस महा-नगरी में अत्यन्त सावधानी और तन्मयता के साथ अपना इलाज करा सके और सुयोग्य डाक्टरो और उनकी कीमती दवाइयो एव इजेक्शनो के बिल उसी तत्परता के साथ चुका सके, जिस तत्परता से वह अपने खाने-कपडो की धुलाई आदि के बिल चुकाता है। तिस पर भी वह अपने दिन प्रतिदिन नष्ट होते हुए स्वास्थ्य के प्रति और अधिक उदा-सीन नही रह सकता। उसे अपनी नियमित चिकित्सा करानी ही होगी—हाँ, इतना भर अवश्य हो सकता है कि डाक्टर कोई ख्यातिप्राप्त न हो महज डाक्टर ही हो और सस्ता हो तो भी उसका काम फिलहाल

तो चल ही जाएगा। बाद की बाद मे सोचा जाएगी।

वह उस समय प्रतिदिन की ही भाँति खोदादाद सर्कल के एक होटल में खाना खाने जा रहा था। डाक्टर को दिखाने का दृढ निश्चय कर, वह होटल की ओर न जा, सर्कल पर ही के एक उपेक्षित कोने में एक डाक्टर साहब के तिरछे लटतते हुए साइनबोर्ड की ओर मुड गया।

डाक्टर साहब ने उसका स्वागत किया और उसके कुर्सी लेकर बैठ जाने पर, उसका नाम पूछ कर अपने रजिस्टर मे लिखते हुए वे बोले, "आपको क्या तकलीफ है ?" शैवाल ने बताया कि कोइ डेढ एक महीने पहले जुकाम हुआ था। धीरे धीरे खासी भी हो गयी। और अब दोनो चीजे साथ साथ चल रही है। कफ बहुत आता है और गले मे खरिश बराबर बनी रहती है। बदन भी कुछ टूटा-टूटा सा रहता है मामूली समझ कर पहले तो रोग की तरफ कोई ध्यान ही नही दिया। बाद मे सिरोलीन-रचि की एक बोतल ली, लेकिन उससे कुछ भी लाभ न हुआ। अब जो हालत है सो सामने ही है।

डाक्टर ने शवाल का एक एक शब्द अपने रजिस्टर मे लिख लेने के बाद, स्टेथस्कोप से अच्छी तरह उसकी छाती और कमर की परीक्षा की और तब गम्भीर स्वर में कहा, "देखिए, मै खाँसी के लिए आपको दवाई दे रहा हूँ। साथ ही मेरी सलाह है कि आप फौरन अपना एक्सरे करा लीजिए। खतरे की कोई बात नही है, लेकिन आप नौजवान आदमी है, सावधानी आपको बरतनी ही चाहिए।"

शैवाल के दिल मे एक सनाका-सा हो गया। डूबते से स्वर में बोला, "जी, एक्सरे की तो कोई बात नही, आप कहते है तो मै जरूर करवाऊँगा, लेकिन फिलहाल मै इस हेसियते मे नही हूँ कि एक्सरे पर बीस पच्चीस खर्च कर सकू। पिछले चद माहो से मेरा हाथ बहुत तग है। इस कारण अगर एक्सरे इस वक्त टाल दिया जाए, तो कोई हर्ज तो नही। आप मुझे अपनी दवाई देते रहिएगा न. ।"

डाक्टर साहब सिर हिलाते हुए बोले, "नही नही, ऐसा कैसे हो

सकता है ? एक्सरे को टाल का मतलब है रोग को बढ़ाना देना। मान लीजिए कि अगले महीने तक रोग कुछ और शक्ल ले ले—मसलन या ..फिर बात रोक, कुछ ठहर कर सोचते हुए बोले, 'आप इस वक्त कितने रुपये तक खर्च कर सकते हैं ? .पन्द्रह कर सकते हैं ?"

शैवाल डरता हुआ बोला, "इस वक्त तो एक भी नहीं कर सकता। लेकिन आप कहते हैं, तो पन्द्रह रुपये कहीं से कर्ज लाने की कोशिश करूँगा और अपना एक्सरे करवा लूंगा।"

'ठीक है !" डाक्टर साहब बोले, "मैं पन्द्रह में ही आपका एक्सरे करवा दूंगा, यों पच्चीस लगते हैं। दादर बी० बी० सी० आई० में 'रामकुवर चैरिटेबिल एक्सरे इन्स्टीट्यूट' है। वहां के डाक्टर मेरे परिचित हैं। आप मुझ से उनके लिए एक पत्र ले जाइए और पैसों का प्रबन्ध कर, इस पत्र को उन्हें देकर, अपना एक्सरे करवा लीजिए। यह बहुत जरूरी है। वैसे मैं आपको दवाई देता रहूँगा।"

शैवाल ने चुपचाप अपना सिर हिला दिया। डाक्टर साहब पैड खींच कर पत्र लिखने लगे। पत्र समाप्त कर लिफाफे पर पता लिख शैवाल को देते हुए बोले, "मैंने इसमें सब कुछ लिख दिया है। आप जा कर अपना एक्सरे करा लीजिए। रिपोर्ट वे लोग अपने आप मेरे पास भेज देंगे।"

पत्र और मिक्सचर की शीशी ले, डाक्टर से सब हिदायतें समझ, शैवाल ने उनसे फीस की बाबत पूछ कर कुछ मिमियाते हुए, पांच का एक नोट उनके सामने रख दिया, जो उन्होंने दो तीन बार देख, अपनी उँगलियों पर एक आध बार लपेट, शैवाल की रोनी सी सूरत पर तीन चार विचित्र सी नजरें डाल कर आखिर अपनी जेब में रख ही लिया। शैवाल की जान में जान आयी वह दूकान से बाहर निकला।

आफिस पहुँच कर शैवाल सीधा मैनेजर साहब से मिला। आफिस मैनेजर उस पर थोड़े मेहरबान थे। उसे देख कर बोले, "कहिए मिस्टर शैवाल क्या बात है ?"

शैवाल ने कहा, "मैं आप से कुछ कहना चाहता था। आप इधर शायद यह नोट कर रहे हों कि पिछले कुछ दिनों से मेरी तबीयत गिरी हुई रहती है। ज्यादा काम नहीं कर पाता। अब तक तो मैंने खासी लापरवाही बरती, लेकिन अब सोच रहा हूँ कि ढंग से अपना इलाज करवा लूं, ताकि रोग बढ़ कर दूसरी अवस्था न लेने पाए!"

"जरूर......जरूर!" मैनेजर साहब ने तपाक से कहा, "आप अपने इलाज के लिए छुट्टी चाहते हैं?......कितने दिन की?" शैवाल मुस्कराया, बोला, "जी, छुट्टी नहीं, मुझे कुछ रुपये चाहिए—सख्त जरूरत है। अपना एक्सरे करवाना है।" मैनेजर साहब कुछ क्षण चुप रह कर बोले, "देखिए, आप तो जानते ही हैं, हमारे यहां एडवांस देने का सिस्टम नहीं है, क्योंकि हम लोग तनख्वाहें ठीक सात तारीख को दे देते हैं। इस वजह से आपको एडवांस कुछ दिलाने में तो मैं मजबूर हूं। और कोई बात हो तो बताइए।"

मैनेजर साहब की साफगोई पर शैवाल निराश हो गया। कुछ देर वैसा ही खड़ा रहा, फिर कहने लगा, "अच्छा तो फिर जाने दीजिए।" और चलने लगा।

उसको निराश लौटते देखकर मैनेजर साहब को थोड़ी दया हो आयी, बोले, सुनिए!" और शैवाल के निकट आने पर धीमे स्वर में पूछने लगे, कितने रुपयों से आपका काम चल जाएगा?"

"पन्द्रह रुपये एक्सरे के लिए देने होंगे।"

शैवाल ने आशा-सूत्र पकड़ते हुए उत्तर दिया।

"ठीक है। आप पन्द्रह रुपये मुझ से ले लीजिए और अपना एक्सरे करवा लीजिए।" मैनेजर साहब ने पर्स में से रुपये निकालते हुए कहा।

"बहुत-बहुत धन्यवाद!" शैवाल ने रुपये लेते हुए अपनी कृतज्ञता प्रकट की, "आपने मेरा काम चला दिया। मैं अगली तनख्वाह पर ही..."

"ठीक है, ठीक है !" मैनेजर साहब बात वही रोकते हुए बोले, "तो आप एक्सरे कब करवा रहे है ?"

"जी कल एक बजे।" शैवाल ने कृतज्ञ स्वर मे उत्तर दिया।

"अच्छा मुझे भी अपनी रिपोर्ट दिखलाइएगा कि क्या शिकायत है।" मैनेजर साहब ने वालदैन वाले लहजे मे कहा, "आप लोग कमाल करते है। भला इस उम्र मे भी एक्सरे की कभी जरूरत पडती है ?" और हँसने लगे।

बिना एक्सरे के ही शैवाल का मन हल्का हो गया था। वह भी हँसने लगा।

दूसरी सुबह दस बजे के लगभग शैवाल होटल मे बैठा खाना खा रहा था कि बारह एक साल का लडका काउटर के सामने आ कर होटल के प्रोप्राइटर सरदार बलवत सिह से गिडगिडा कर कहने लगा "सरदार जी, मुझे तीन रुपये दे दीजिए वरना आज स्कूल से मेरा नाम कट जाएगा।"

शैवाल का कौर, जो हाथ से मुह की ओर बढ़ रहा था, वही रुक गया उसने गर्दन घुमा कर देखा कि दुबला, सांवला सा एक लड़का नगे पैर, नगे सिर, काख में तीन चार किताब कापिया दबाए बडी करुणा के साथ सरदार के भावहीन चेहरे को आशा भरी दृष्टि से देख रहा है। लडके ने खाकी कमीज और खाकी ही हाफ-पेंट पहन रखी थी। सरदार ने अब उसकी ओर एक आग्नेय दृष्टि डाली और बोला, "भागो यहा से। न जाने कहा से आ जाते है ? कगले कही के......" और बाद के शब्द उनकी घनी दाढी व घनी मूछो के अन्दर छिपे ओठो के बीच ही बुदबुदाते रहे। बाहर न आ पाये।

लडका लगभग रोने पर आ गया। भरे स्वर से गिड़गिड़ाता हुआ बोला, "मै सच कह रहा हूँ सरदार जी। अगर आज मैंने फीस के तीन रुपये जमा नही किये तो कल मेरा नाम कट जाएगा। मेरे मा बाप नही है। मुझे कोई फीस देने वाला नही है मुझ पर दया करो।

मै तुम्हारे आगे हाथ जोडता हूँ।" और वह हाथ जोड फूट फूट कर रोने लगा।

बालक के कहने मे जो सचाई और रुदन मे जो दर्द था उसने शैवाल के अन्तर को छू दिया और वही उसी तरह बैठे बैठे सहसा उसकी आखो के सामने कई वर्ष पहले का इससे मिलता जुलता एक चित्र थिर हो उठा' जिसमे बारह या तेरह वर्ष का एक मातृ-पितृ हीन बालक इसी प्रकार आसू बहाते हुए कुछ अपरिचित व्यक्तियो से अपनी स्कूल फीस के लिए गिडगिडा रहा था और वे व्यक्ति उस बालक के रोने को एक छल या अभिनय समझ उसे दुत्कार रहे थे। और धीरे धीरे बचपन का वह शैवाल बालक के रूप में परिवर्तित हो गया जो शैवाल ही की तरह अत्यन्त पीडा के साथ कह रहा था कि 'मेरे मा बाप मर गये है' और जिसे मोटा सरदार रूखे स्वर मे जवाब दे रहा था कि 'हम क्या करें ? हमने कोई यतीमखाना खोल रखा है ?......' और तब शैवाल से न हो सका कि वह खाना खतम कर सके, खाना वैसा ही छोड वह उठ खडा हुआ और बालक को ठहरने का सकेत कर मुँह हाथ धोने चला गया।

लौट कर बालक के निकट आ गया और उससे पूछने लगा, "तुम्हे फीस के वास्ते चाहिए पैसे, या किसी काम के लिए ?"

बालक का रोना ठण्डा पड रहा था लेकिन दोनो गाल आसुओ मे तर हो गये थे। वह। आसू पीते हुए उसने उत्तर दिया, जी फीस के वास्ते ही चाहिए, मै पुछवा सकता हूँ आपके सामने।"

"किससे पुछवा सकते हो ?" शैवाल ने प्रश्न किया।

"जी, अपने क्लास टीचर से।"

"कहा है तुम्हारा स्कूल ?"

"किंग्स सर्कल मे, एन० सी० साउथ इंडियन हाई स्कूल। मै वही पढता हूँ छठी क्लास मे। बालक ने कुछ विश्वास पाते हुए कहा। उसके आसू थम चले थे।

सरदार जी अब तक चुपचाप खड़े यह सब देख रहे थे, लेकिन अपने होटल में अपने ही सामने शैवाल को उस अपरिचित लड़के से दिलचस्पी लेते देख वह और अधिक खामोश न रह सके। शैवाल से बोले, "आप भी किस चक्कर में फँस रहे हैं मिस्टर ? यह तो बम्बई है। यहाँ तो इस तरह का ढोंग कर पैसे माँगने वाले हजारों घूमते हैं ? एक दिन शाम तक यहाँ होटल में ही बैठ रहिए, देखिए फिर, इस जैसे कितने आते हैं। किसी की जेब कट गयी होती है, किसी की नानी के इस परदेस में बच्चा हो गया होता है, किसी का सामान स्टेशन पर चोरी चला गया होता है ..बस ऐसों का ताता लगा ही रहता है। और देखा यह गया है कि इस तरह रो-धो कर माँगने वाले सब चार सौ बीस होते हैं। मुसीबतें हम पर भी पड़ी हैं साहब, लेकिन इस तरह आँखों में आँसू हमारे कभी नहीं आये..." और अपनी बात की ताईद के लिए उन्होंने अपने अन्य ग्राहकों की ओर देखा जो मसरूफ़ी से खाना खाते हुए भी सरदार जी की बात पर अपने सिर हिलाए बिना न रह सके।

एक तीव्र विरक्ति से शैवाल का मन भर उठा—यह मोटा सेठ मुसीबतों और आँसुओं की बाबत बात करता है ! इसे क्या मालूम कि मुसीबतें छटपटाते इंसान को क्या करने पर विवश कर डालती हैं।...लेकिन इस भैंसे ने मुसीबतें देखी-उठायी कहाँ हैं ? दागी दिल-वाला यह जानवर भले को भी अपनी तरह दागदार ही समझता है !...और उसकी 'हाँ' 'हाँ' मिलाने वाले ये काठ के चलते-फिरते खिलौने, मशीन की सभ्यता ने जिनकी समस्त मानवीय भावनाओं को रपज कर डाला है, ये मानवता-शून्य खिलौने एक दुःखी मानव की पीड़ा क्या समझेंगे ?...

अब शैवाल बोला, "देखो भाई, मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे स्कूल चलता हूँ। मैं तुम्हारे क्लास-मास्टर से भी मिलूँगा और तुम्हारे हैड-मास्टर से भी, और कोशिश करूँगा कि तुम्हारी फीस माफ हो जाए। जिन बच्चों के मा बाप नहीं होते उनकी फीस तो..." और सहसा वह

रुक गया क्योंकि उसे ध्यान आ गया था कि स्कूल से फीस माफ या आधी कराने के लिए भी ता सिफारिशें चलती हुं। जिनकी गार्ली सिफारिश हाती है उनको फीस मे अवश्य ही रियायत मिलती है बिना सिफारिशवाले की पूछ नही है—भाले वह बेमहरा और जरूरत-मन्द हो ..

एक विजयपूर्ण दृष्टि गरदार पर और खाना निगलते हुए पुन: पर डाल शेवाल सीना फुलाए, उस बालक को हाथ का सहारा देता हुआ होटल के बाहर निकल आया। मुसकराते हुए उसने सुना, मरता ' झेंपे स्वर मे उपस्थित ग्राहकों से कह रहा था, "अभी बम्बई में नये आये है !" और यह सुन उसकी मुस्कराहट और बढ गयी थी। सड़क की पटरी पर आ कर उसने कहा, "ट्राम पकड ले ?" बालक अब पयत स्वर मे बोला, 'क्यो इकन्नी खर्च करते है ?

पैदल चलते है—कोई बहुत दूर नही है।"

शेवाल ममकराया, 'अच्छा ता चलो।"

और रास्ता चलते चलत उस गुमसुम बालक ने धीरे धीरे अपनी गाथा शेवाल का सुना डाली। वह दक्षिण भारत का रहने वाला है। नाम शास्त्री है। पिता झिताई और पूजा जाप करते थे—यही बम्बई मे। पिछले वर्ष उनका देहात हो गया है। मा बचपन में ही चल बसी थी। अतः उसे अपने दूर के एक चाचा पर 'भार' बन कर रहना पड़ा। गरीब होते हुए भी चाचा ने अपने इस 'भार' से किनाराकशी कर ली। अब आलम यह है कि वह सोता तो अपने चाचा के यहां घर है लेकिन एक टाइम का खाना उन घरों मे खाता है जहा अपने पिता की मृत्यु के बाद से वह पूजा करने लगा है—(पिता उसे पूजा करना गये थे, इसी पूजा की बदौलत उसे एक खाना मिल जाता है)। पहले फीस आधी थी, इस कारण पूजा मे जो एक दो आने कभी कभी मिल जाया करते थे उन्हें जोड कर महीने भर में फीस निकल ही आती था, लेकिन इधर पाचवी क्लास मे उसके बहुत कम नम्बर परीक्षा मे आने

जिससे स्कूल वालो ने उसे पास कर छठी मे तो चढा दिया मगर फीस पूरी कर दी। पिछले महीने तो उसने किसी न किसी तरह जोड तोड कर फीस दे दी, मगर इस माह अब तक पैसे न जुट सके और आज आखिरी तारीख आ गयी। सुबह घर पर चाचा से पैसे माँगे तो उन्होने बुरी तरह झिडक दिया और मा बाप को गाली दी। परेशानी की हालत में कुछ नही सूझा तो यही खयाल आया कि किसी होटल रेस्टोरेंट मे चल कर माँग लूँ। ये लोग दिन भर मे पचा सौ कमा लेते है, तीन रुपये इनके लिए कौन सी बडी बात होगी? यही सोच वहाँ होटल में गया था। फिर वहाँ शैवाल मिल गया था..

बालक कहता जाता था, "जी, मै काम करने से तो नही डरता। मुझ से आप कोई भी काम करवा लीजिए, मैं फौरन करूंगा, मगर मुझे पढने से बहुत प्यार है। पढाई छोड़ कर मै कुछ भी न कर सकूगा। पढ़ने के साथ मै घर का कोई भी काम या छोटी मोटी नौकरी कर सकता हूँ। मेरी पढाई में कोई हर्ज न होगा। लेकिन मै पढना नही छोडूगा। चाहे कुछ भी क्यो न हो। अभी मैं छटी में हूँ—कम से कब बी० ए० तो मै जरूर करूंगा!" और उसके उस पवित्र आतरिक उत्साह से उसका पीला-पीला सा चेहरा चमकने लगा।

बालक की बात शैवाल के अन्तर को छू गयी। इस निराश्रित बालक की ही तरह चद साल पहिले उस निराश्रित बाल शैवाल की भी तो यही कामना और साधना थी कि वह प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझता हुआ अवश्य ही उच्चतम शिक्षा प्राप्त करे। उसकी लगन ने उसकी आशा पूर्ण करा दी थी और वह एम० ए० हो गया था। यह एक अलग बात थी कि एम० ए० हो कर भी आज वह ईमानदारी और सचाई के कारण (यो कहें, अपनी व्यवहार-अकुशलता के कारण) उतना ही असहाय और उतनी ही डावाडोल स्थिति में था जैसा अपने विद्यार्थी-काल में था। किन्तु इससे क्या, पढाई क्या पैसा कमाने के लिए ही की जाती है? आज शैवाल अपने दूसरे युनिवर्सिटी-साथियो

की तरह अपनी एम० ए० की दर्शनी हुंडी को कैश नहीं करा पाया है, मगर उसे इस बात का किंचित् भी मलाल नहीं है, क्योंकि अपनी शिक्षा से उसे ज्ञान प्राप्त हुआ है, विवेक प्राप्त हुआ है और सबसे बड़ी चीज मानवीय संवेदना प्राप्त हुई है। आज वह परायी दुख-पीड़ा कसक अधिक तीव्रता से महसूस कर पाता है। चलते चलते शैवाल ने फिर एक नजर उस बालक को देखा जो सिर झुकाए उसके साथ कदम उठा रहा था। और तब अचानक ही शैवाल ने निश्चय किया कि नहीं, वह इस स्वप्न दर्शी बालक का दिल नहीं तोड़ेगा। वह इस बालक की सहायता करेगा और इसे ऊंची शिक्षा दिलवाने की पूरी कोशिश करेगा। यह कोई तर्क नहीं कि जब वह एम० ए० हो कर कुछ कर न सका तो यह सीधा सादा व सच्चा बालक बी० ए० होकर क्या कर लेगा? शायद तब तक समय बदल जाए और तब ईमानदार व सच्चे व्यक्तियों का आदर हो सके और उन्हें ऊपर उठने की सुविधा मिल सके। और अगर न भी मिल सके तो भी क्या, इस भोले बालक के दिल में यह अरमान तो नहीं रहेगा कि वह अशिक्षा के गहरे गर्त में ही गिरा पड़ा रह गया है। पढ़ लिख कर वह पैसे वाला आदमी न सही, एक अच्छा नागरिक तो बन सकेगा। और शैवाल का निश्चय दृढ़ हो गया—वह अपनी आवश्यकताओं को कुछ और कम कर इस बालक की शिक्षा सम्बन्धी सहायता अवश्य करेगा।

स्कूल पहुंच कर वह शास्त्री के क्लास-टीचर से मिला। उन्होंने भी यही कहा कि 'लड़के की आर्थिक स्थिति बहुत खराब है, फिर भी उसे शिक्षा प्राप्त करने का बहुत अधिक चाव है। उसकी लगन से वह भी बहुत अधिक प्रभावित हैं। वह स्वयं उसकी मदद करते, किंतु विवश हैं क्योंकि उनकी अपनी स्थिति ही...और फिर आजकल का टाइम..."

शैवाल ने कहा कि वह उनकी बात समझ गया है और यही कारण है कि वह इस बालक की सहायता के लिए खड़ा हुआ है। उसने

अपनी जेबें टटोलीं और एक्सरे के लिए रखे वही पन्द्रह रुपये निकाले और शास्त्री की उस माह की तथा अगले चार माह की फीस अदा कर दी। शास्त्री और उसका क्लास-टीचर आश्चर्य में शैवाल की ओर देखते रहे। कोई कुछ न बोला। हाँ, जब फीस की रसीद शैवाल ने शास्त्री की ओर बढ़ायी और कहा, "लो मिस्टर, यह तुम्हारी अगले चार माह की फीस की रसीद। इसे संभाल कर रखना।" तो हाथ बढ़ाते हुए शास्त्री की आंखें डबडबा आयीं। उसने कहा कुछ नहीं, लेकिन जिस दृष्टि से उसने शैवाल की ओर देखा वह स्पष्ट कह रही थी कि उस बालक का रोम-रोम शैवाल का ऋणी है।

शैवाल ने तब एक कागज़ पर अपना पता लिख कर शास्त्री को यह कहते हुए दे दिया कि "अब जब भी फीस की, या किताब कापी की, या किसी और चीज की तुम्हें ज़रूरत हो तो मेरे पास इस पते पर बे झिझक आ जाना।"

× ×

अगली सुबह जब शैवाल आफिस पहुंचा तो उसके मैनेजर साहब ने उससे प्रश्न किया, "कहिए जनाब, एक्सरे करवा लिया?"

शैवाल ने सोचते हुए कहा, "जी हां!"

"क्या रिपोर्ट आयी?"

शैवाल ने उत्तर दिया, "जी, रिपोर्ट तो नहीं मिली!"

"कब मिलेगी?"

शैवाल सोच में पड़ गया। धीरे से बोला, "जी, ठीक-ठीक तो नहीं कह सकता। शायद रिपोर्ट मिले भी न! लेकिन इतना मुझे यकीन हो गया है कि रिपोर्ट मेरे 'फेवर' में ही होगी।"

शैवाल ने तब उन्हें समझाना चाहा कि उसका एक्सरे तो अवश्य हो गया है, लेकिन फेफड़ों का नहीं, हृदय का हुआ है। साथ ही, एक्सरे करने वाला कोई मामूली डाक्टर नहीं था, बल्कि इस दुनिया के सब डाक्टरों का डाक्टर था, जिसने इस ढंग से एक्सरे लिया कि शैवाल को

भी पता चल गया कि इस यंत्र-चालित महानगरी के बीच रहते हुए भी इसका हृदय इतना स्पंदन रहित नहीं हुआ है कि किसी दुःखी एवं पीड़ित की वेदना को अनुभूत न कर सके। इसका हृदय (भले ही वह अस्वस्थ प्रतीत हो) अनेक स्वस्थ हृदयों से अधिक स्वस्थ है। इस कारण उसके लिए भय या चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है। वह रोग की ओर से निश्चिन्त हो अपने रास्ते पर आगे बढ़ सकता है। लेकिन यह तमाम बात इस कदर अस्पष्ट (Vague) थी कि शैवाल लाख प्रयास के बावजूद भी अपने मैनेजर साहब को इसे समझाने के प्रयास में सफल नहीं हो सकता था।

...और शैवाल काफी देर तक वैसे ही खड़ा, सिर खुजाता हुआ सोचता रहा कि आखिर न समझायी जा सकने वाली इस बात को मैनेजर साहब को कैसे समझाए ?

प्रभाकर माचवे

बैंडमास्टर

नब्बन खाँ का पुश्तैनी पेशा यही था बैंड बजाना। बाप अँग्रेजी बाजा बहुत खूब बजा लेते थे। मगर तब की बात छोड़ो। तब तो रईस भी एकेक ऐसे थे कि बस एक नाच-गाने मे बजवैयों की जिंदगी बना देते थे। तब 'थेटर' भी खूब चलते थे। अब आज-सा सस्ता सिनेमा नहीं था कि चवन्नी में पर्दे पर सुरैया देखलो चाहे कज्जन। मगर बाप ने पी भी बहुत। नतीजा यह था कि विरासत मे छोड़ गये थे वे सिर्फ एक क्लेरो-नेट और एक फूटा-टूटा-सा ढोल। झोपड़ीनुमा मकान तो खैर कभी का नीलाम हो चुका था। सो अब जाकर कहीं दस बरस मे बाप का कर्जा चुका पाया था। और नब्बन खाँ सोच रहे थे कि चलो, छुट्टी पायी। अब जरा दम लेंगे। शादी करेंगे। और फिर आराम से जिन्दगी गुजारेंगे। गो बाप-दादे उनके यही पेशा करते आ रहे थे, फिर भी नब्बन खाँ को कुछ बैंडमास्टरी से नफरत सी थी।

उसकी वजह थी उनका छोटा भाई, अशफाक। अब तो अशफाक हुसैन साहब बाबू बन गये। गिटपिट अँग्रेजी भी पढ़-लिख गये। अब तो भाई से पहिचान भी बतलाने में शरमाते हैं। बेटा भूल गये कि बाप ने बैंड बजाने में उम्र बिता दी। मगर दिल के अन्दर-अन्दर नब्बन खाँ कुछ

नर्म होकर सोचने लग जाते है—'बड़ा होनहार निकला।' कुछ मन ममोसकर सोचते रहते कि काश, हम भी कुछ पढ़-लिख लेते। मगर अब जिन्दगी बहुत आगे निकल चुकी, बाल भी सिर पर कुछ सफेद होने लगे हे। चेहरा गरीबी और अनियमित जीवन-रीति मे सिकुड़-सा गया है। इस सैतालीस-अड़तालीस की उम्र में शादी? ऊं।

कल नब्बन खाँ ने कहीं सवेरे अशफाक को देख लिया था। किसी जलसे मे वह आया था, और उस छोटे-से देहात मे आप जानते है कि पहिले ही बहुत पिछड़ी-सी कौम मे एक पढ़े लिखे का आ जाना बड़ी बात है। वह बहुत जल्द नेता मान लिया जाता हे। अशफाक साहब पाकिस्तान की खूबियां बताने उस देहात मे पधारे थे, और अपनी तकरीर के दौरानमें उन्होंने फरमाया था कि हिन्दुओ का बायकाट कर दो। बात बहुतसे मुसलमानो को जँच गयी थी और उन्होने वहीं कसमे भी खा ली थी कि वे ऐसा ही करेंगे। यह सब शाम को हुआ था। तब से नब्बन के दिल में एक रस्साकशी-सी चल रही थी। वह सोच नहीं पा रहा था कि क्या करें? लाला हरकिशनदास के घर में शादी थी, आज शाम को उसे अपना बैंड वहीं ले जाना था। रात को बरात में भी जाना लाजमी था। यह पुश्तैनी 'नेग' है। लाला हरकिशनदास के और नब्बन खाँ बैंड वाले के रिश्ते सिर्फ पैसे-कौड़ी के ही तो नहीं थे। उसमें भी बहुत में कहीं आश्रयदाता और आश्रित कलावंत के (सामंती) रिश्ते थे।

नब्बन खाँ सोचते रहे और अपनी खशखशी दाढ़ी खुजलाते रहे। जिस तंग मकान में वे रहते थे उसके आगे के चबूतरे पर उन्होंने खटिया डाल रखी थी, वहीं हुक्के के नेचे को एक हाथ में पकड़े वह कुछ सोच में पड़ गये। हुक्के की चिलम पर रखे अंगारो पर राख जम आयी, सूरज भी खासा ऊँचा चढ़ आया था, मगर वह भूल गये थे कि अब क्या करें? जवान भतीजे पीरू ने आकर कहा, "मैं आज बसरी नहीं बजाऊँगा।"

"क्यों?" नब्बन खाँ ने भौंहें कुछ टेढ़ी कीं।

"हम हिंदू के घर बैंड में नहीं जायेंगे।"

और "नेग जो है। उनके सलूक हमारे साथ कभी उस तरह के नहीं रहे।"

"नहीं रहे होंगे। हम नहीं जायेंगे।"

"तुम नहीं जाओगे, तुम्हारी शामत जायगी।" नब्बन खाँ ने हुक्का एक तरफ रख दिया। उनका सुर चढ़ता जा रहा था—"मुफ्त में टुकड़े हमारे ही घर में तोड़ोगे? क्यों—मैं इस उम्र में रात-रात-भर जगूँ, साँस फूलकर दमा हो गया है फिर भी बैंड ले जाऊँ- और आप बड़े शहजादे बने हैं जो फोकट में खाते रहेंगे।'

ताँगेवाला रसूल पीरू का दोस्त था। वह उधर से आ निकला। नब्बन खाँ ने उसी पर आग-भाप बरसानी शुरू की। गुस्सा असल में इस बात का था कि वे अपने लड़के को बात दिल से चाहकर भी नहीं कर पा रहे थे। गुस्सा उतारने का निमित्त कारण रसूल बना। "लो ये देखो, बुरी सोहबत के नतीजे! इसी ने बिगाड़ा है तुम्हें। तुम्हारे जेहन को कीड़े खा गये हैं। ये इन्हीं के गंदे ख्यालात तुम्हारे दिमागों में घुस आये हैं। अरे, तुम्हारे बाप-दादों को इसी लाला हरकिसनदास ने पाल-पोसा था ना? अहसान फरामोश हो गये क्या?'

मगर रसूल और पीरू बातें सुनने के लिए कहाँ ठहरे थे। नब्बन की आँखें गुस्से से लाल थीं। चिलम के अंगारे धधक रहे थे। धुएँ के चक्कर हवा में मँडरा रहे थे। मगर वे दोनों जवान लड़के बेखौफ, बेखटके बहुत दूर निकल चुके थे। सवेरा ऐसा ही फीका-फीका निकला तब दो घंटे बाद साबिर आया।

साबिर बैंड का सबसे छोटा, मगर सबसे जरूरी हिस्सा था; लोहे की तिकोनी छड़ बजा कर ताल दिया करता था। और ऐसे जब बड़े मौके पर बहुत-से बटनों वाली लाल वर्दी और जरीन फुंदों वाली टोपियां पहन कर अकड़ के बैंड निकलता तब झाँझ बजाया करता। नब्बन ने साबिर से अपना दुख कहा—"पीरूमियाँ अब मोटरगाड़ी चलाने जा

रहे है। जरा बैंड बजाना तो ठीक से सीख लें—पेट में चूहे कूदेंगे तो लाइरी की हेकड़ी सब भूल जायेंगे।"

"क्या हुआ नब्बन चचा ?"

"होता क्या ? वही रसूल आया था कम्बख्त, उसे बहकाने वाला। ले गया कहीं।"

जैसे कोई बड़ी लजीज चीज खाते हुए मुँह मटका रहा हो, ऐसे साबिर ने आँखे मिचकाते हुए शरारत-भरी मुस्कराहट से कहा—"और कहाँ गये होंगे ? वही वो थेटर में नाचने-गाने वाली नयी रकम आयी है न ? चाँदनी-चाँदनी-सा उसका नाम है. ."

बारह बरस के बच्चे के मुँह से दुनिया की दानिशमंदी का ऐसा तजुर्बे से भरा हुआ जुमला सुन कर नब्बन कुछ अंदर से पिघल आया—"ओह, तो मेरी भूल हुई। ये हिंदू का बाईकाट और लाला हरकिशन की शादी वगैरह-वगैरह बहानेबाजी थी। असल में पीरू कहीं और ही पेचोखम में उलझे हैं।"

और फिर सामने पिंजरे में टँगी मैना की ओर देखते-देखते नब्बन-चचा सीटी बजाने लगे और कोई भद्दा-सा गाना गुनगुनाने लगे—"उलझा है दिल तेरी बालों की लट में .." कि उसकी तंद्रा को भंग किया साबिर ने यांत्रिक ढंग से आगे की पंक्ति कह कर—'देखूं ये महताब जागा घूंघट में—ये तो सब ठीक हो गया, मगर आज के खाने-वाने का क्या सोचा है ?"

पड़ी है कल रात की खिचड़ी देगची में। पीरू तो है ही नहीं। अशफाक भी चले गये। साबिर। जिंदगी में कोई किसी का नहीं होता। तुम सैयद को जानते हो। आजकल बड़ा-सा 'ड्रम' (ढोल) बजाते फिरता है। जो कुछ मिल जाता है, ढाल देता है। ऐसा पहले नहीं था। एक जमाने में उसकी आवाज भी ऐसी सुरीली थी कि हूरों के गिटार क्या चीज थे ? मगर यही...यही. . जिंदगी की अव्वल और आखिरी गाँठ ..यही शराब का न उतरा हुआ नशा ..एक औरत

उसकी जिंदगी मे आयी। और सैयद की मुहब्बत दूसरी से देखकर, नागिन की तरह उसने डँस लिया। बदला भी वह लिया कि पान मे सिंदूर खिला दिया और सैयद की आवाज तब से यही फटी-सी हो गयी और अब बस अपने बम-टपा-टपटप बम-टपा-टपटप करते हुए उमर के साल टीप रहे है ”

साबिर ने सोचा कि जब-जब बात वह रोटी की करता है, नब्बन का दिमाग हेर-फेर कर उसी एक औरत वाले खयाल मे चला जाता है। तब उसने सोचा कि शायद वह औरत की बात छेड़े, तो उसी की मारफत वह अहम सवाल—रोटी पर आ जाये। उसने भी बिल मे हाथ डाल ही दिया—“नब्बन खाँ, तो तुम शादी क्यो नही कर लेते ?”

कुछ सनकी-सी हँसी नब्बन हंसा। चेहरे पर झुरियो का जाला और तन गया। आँखे जो पहिले ही मैले-काले गड्ढो में धँसी थी, चमक उठी। टूटे हुए दो दाँत साफ दिखाई दिये। बोल—‘शादी ? हमसे अब कौन शादी करता है ?” और वह खोखली-सी हँसी में अपनी तनहाई का दर्द छिपाने लगा।

थोडी देर बाद करीम आया। यह बैंड की जान था, क्योकि बैग-पाइप यही सबसे अच्छा बजा लेता था। बोला, “सुना उस्ताद, यह भी खासा मजाक रहा। आपका वो पीरू, बडी हाँकता था कि हिंदू के यहाँ बाजा नही बजायेंगे, और ये और वो। आज ही उसने थियेटर में नौकरी कर ली थी। वहाँ भी उसे कौन से सोने के कड़े मिल जाते। सऊर तो जरा भी नही है। और मैंने सुना है, कल जो लाला हरकिशन-दास के यहाँ शादी का जलसा हो रहा है, उसमें ये थियेटरवाले नाच-गाना कर रहे हैं। आ गये न फिर हेर-फेर कर वहीं। जायेंगे कहाँ—गाँव में पैसे देनेवाला तो एक ही है—चाहे हिंदू हो या और कोई—”

नब्बन खाँ की आँखें फिर चमकी। वह सब कुछ समझ गया। बोला नही। कहा—“होगा, होगा। हम लोग तो गाने-बजाने की दुनियां में रहनेवाले है। हमें दूसरी सियासत से क्या लेना-देना है ?

जाय हिंदू भाड मे और उनपै जलनेवाले और कौमवाले जहन्नम मे !"
और भी उसने दस-पाँच गाली साथ में जोड दी।

बहरहाल, उस शाम को गाँव के सबसे बडे जमीदार, लाला हरिकिशनदास के यहाँ शादी हुई। उस रात बारात मे नब्बन अपना बैंड ले गये थे। जागना पडा। आँखें वैसी ही लाल-सुरख हो रही थी। उनके बैंड के आधे से ही लोग जुट पाये थे। बाकी को, उनके शब्दो मे पीरू बहकाकर ले गया था। सैयद 'टिपटिप बूम टिप' करते जाते थे, करीम बेंडपाइप साँस फुला-फुलाकर बजा रहे थे, साबिर ने झाँझ ले लिये थे और बड़ा बाजा भी कासिम ने महारत से बजा लिया था। क्लेरोनेट नब्बन ने जी तोडकर बजायी थी और सिर्फ कमी रह गयी थी बसरी की, छोटे बाजे और दूसरे छोटे ढोल की। वहाँ शादी के बडे भारी जलसे मे कौन फिक्र करता है? कुछ तो भी भडभड बारात के साथ होती रहे, यही उनके संगीत के बारे में 'आलोचना के मान' थे। सिनेमा की सब नयी तर्जें क्लेरोनेट पर बजा-बजाकर जब नब्बन खाँ थक गये तब उन्होने सबेरे की शांत, करुणार्द्र बेला में भैरवी छेडी—
'श्याम मोसू ऐंठो डोले हो—'

गानेवालो की दुनिया और होती है। वहाँ मीरा का देश किस राजनैतिक पक्ष के भौगोलिक खड-विशेष में जाता है यह विचार मीरा के भजन गाते समय नही आ पाता, न वहाँ हिंदू पडित गायक होने से मियाँ तानसेन के दरबारी कानड़े के सुर ओठो से बाहर आने मे शरमाते है। वहाँ जाति-व्यवस्था, धर्मबंधन, वर्गभेद से परे कोई और ही सप्त स्वरद्वीपो की सृष्टि है, जहाँ रूप, रस, गंध और रगो की एक निराली दुनिया है, जहाँ झाँझ-बीन-गितार-आर्गन सब आ सकते हैं—जहाँ शब्द चुक गये हैं, स्वर शेष है। नब्बन खा उस रात, यह सोचकर कि उसके एक तिहाई या आधे के करीब साथी नही है उनके अभाव को अपने स्वर-सम्मोहन से पूर डालना चाहता था। उसने अपने कौशल का अनुपम प्रदर्शन किया।

दूसरी रात थियेटरवालो का तमाशा था। कोई चांदनी-चांदनी सा जिसका नाम है न, वह नाचनेवाली थी। और पीरू वंसी बजानेवाले थे। बैंडवाले भी वहाँ तमाशाई बने पहुँचे। नब्बन के दिल मे पीरू के लिए बेहद अफसोस और गुस्सा था, मगर वह करता क्या ? इस सारे जलसे के बाद बड़े सबेरे मुहूर्त के समय, बारात विदा होनेवाली थी। सो बैंडवालो को अपने साज-समान के साथ वहां पहुँचना पड़ा था। मंच से दूर, एक कोने मे, मंडप के बाहर फस तपाकर उसके पास सैयद ने अपना ढोल रख दिया था। करीम ने बाजा भीत के सहारे टिका दिया था, और साबिर ऊंघ से उनींद आँखो से निकाली लोहे की छड के सहारे सोने की कोशिश कर रहा था।

नाच शुरू हुआ। थियटरवालो के वाद्य नये नये थे और जाने कुछ बराबर हो नही पा रही थी। आखिर नब्बन से रहा न गया। उन्होने भी अपना क्लेरोनेट हलके-हलके फूकना शुरू कर ही दिया। पीरू उधर जल गया और जोर से वंसी फूकने लगा। मगर नब्बन की झुकी हुई पलको के आगे चांदनी और पीरू के प्रेम के प्रति कोई ईर्ष्या, कोई स्पर्धा, कोई क्रोध, कोई रुकावट शेष नही थी। [illegible] एक हम-पेशेवर की मदद करना चाहता था।

ढोल के रस्से खींचकर, कुछ थपकी सी देकर सैयद भी कुछ 'धम टपाटप' करने की सोचने लगे। रात बीतती गयी चांदनी ढलती जाती थी।

सबेरे के कुहासे मे लाला हरकिशनदास के कारिन्दे ने जो कुछ रकम दी उसे गिनकर जाकिट की जेब मे डाल और साथियो मे बांटकर जब नब्बन खाँ अपने घर की ओर मुड़नेवाले रास्ते पर अकेले गुनगुनाते क्लेरोनेट लिये चले आ रहे थे तब उन्हे पीरू मिल गया। वह कुछ नजर चुराकर चलना चाहता था। नब्बन ने ही पुकारा—"पीरू, ओ ए पीरू—इधर कैसे भूल पड़े ?"

"कुछ नही बना, थेटरवाले ठगने है। रात-भर जगाकर मजूरी दी,

तो साढे बारह आने ! मैंने उनसे बहुत हुज्जत की तो बोले—तुम्हारे जैसे एक ही थोडा हैं । हमें कइयों को देना पडता है । और तुम तो नये-नये हो ।"

नब्बन खाँ मुस्कुराये—"साढे बारह आने से ज्यादह तो सरकार ने ये फूल-हार-तमाशे, ये जुल्फों के बनाव-सिंगार और सुर्मे-उरमे में खर्च कर डाले होंगे ।"

पीरू नीची गर्दन कर बोला—"और चांदनी के तबलची को एक बोतल भी दी थी ।"

"मतलब, आप कर्ज करके इश्क करने गये थे ?

पीरू कुछ नहीं बोला

नब्बन ने सलाह दी—"इश्क के शौक हमारे तुम्हारे जैसे मुफलिसों के लिए नहीं होते । ये रईसों और बाबुओं को मुबारक रहें । समझे बेटा पीरू, लैला और मजनूं थियेटर में पर्दे के आगे ही अच्छे लगते हैं । पर्दे के पीछे तो वे मनीजर के खरीदे हुए गुलाम हैं । इससे तो ये बैंड बजाना क्या बुरा है—अपना आजाद पेशा है । किसी का जोर तो नहीं । बजाये बजाये, नहीं बजाये नहीं । अपना काम किया, छुट्टी पायी । गरज हो पचास बार बुला भेजेंगे ।"

'मगर मिहनत तो कुछ ज्यादह ही पड़ती है, चचा !'

"मिहनत से बचकर कहाँ जाओगे ? तुम नतीजा भी चाहो, और उसके लिए काम भी नहीं करना चाहते हो । पीरू, अब की सारी दुनिया ऐसी हो गयी है ? वह अशफाक—कल का छोकडा । आज लीडर बन गये हैं साहब ! वह चाहता है कि हर्रा लगे ना फिटकिरी और रंग आवे चोखा । ये हिन्दू और ये मुसलिम के चर्चे कर देना आसान है । जेलों में सडना, बेंतें, लाठी और गाली खाना इतना आसान नहीं है । मैं पाकिस्तान और खालिस्तान की ऊंची बातें नहीं जानता । मैं सिर्फ जानता हूँ कि मैं बैंडमास्टर हूं, मेरे बाप बैंडमास्टर रहे, मगर अब मैं भी चाहता हूँ कि मैं कोरा बैंडमास्टर ही न बना रहूँ । अशफाक के

बच्चे यह ही नहीं बजाता रहूंगा।" थोड़ी देर रुककर फिर नब्बन बोला—"और ये चांदनी ? इससे मुहब्बत करते वक्त सोचा था कि ये हिंदू हैं कि मुसलमान ? पीरू, चाँदनी से मुहब्बत जरूर करो, मगर उससे पहिले अपनी जेब टटोल लो। घर में हंडिया खाली है और चले हैं साहब कारूं के खजाने की खोज में।"

सवेरे फिर सैयद नब्बन खां के ओटले पर जम गये। बोले—"भाई! रात भर बदन ऐसा दुख रहा था कि जैसे पका घाव हो। अब ये इतना बड़ा ढोल गले में लटकाकर दोनों हाथ नचाने बजाने की उमर नहीं रही।"

सबेरे फिर साबिर ने नब्बन खां को छेड़ा—"तो चचा वह कब घर में लाओगे ?"

अबके नब्बन खाँ ने सूने में आख गड़ाकर मैना का पींजरा देखने की कोशिश नहीं की। पीरू को आवाज दी—"भाई, कलवाले शादी के बताशे जो आये हैं, वो एकेक इस सैयद और साबिर को तो देना।"

पीरू ने कहा—"हमारा मुंह ऐसे पराये घर से बताशों से न मीठा करो। बात सही सही क्या है, कहो, अब तक शादी क्या नहीं की ?"

"छोटे भाई अशफाक को पढ़ाने में ही कमाई सब चली गयी। बची-खुची फूफी जो बेवा थी, वह ले भागी। पीरू भी परसों हाथ से चला जानेवाला था। जवानों का क्या भरोसा है। उन्हें पर होते हैं। हमारी शादी तो इसी क्लेरोनेट से हो चुकी जिंदगी-भर के लिए—" और वे प्रेम से एक नात गजल उसमें छेड़ने लगे—'तुम्ही ने हमें राहे जन्नत दिखायी।'...

—कि खबर से जिनमचंद वकील के मुनीम "बैंडमास्टर, बैंडमास्टर" कहकर आ गये। उनके यहां शादी थी, और बैंड के मोल-भाव ठहराने आ गये थे। उस आठ हजार की बस्ती में नब्बन खाँ ही जो अकेले मशहूर बैंडमास्टर थे।

सैयद ढोल पर वही 'ढूंम-टिपाटिपटिप' करने लगे और पीरू ने

बंसी में कोई काँपती सी धुन छेड़ दी। चाँदनी की आवाज का झीनापन उसमें याद बनकर छसक रहा था...जो कुछ पैसे पीरू ने बचाये थे, वह भी चाँदनी अपने नकली गोटे की ओढ़नी के लिए झटक ले गयी थी। और पीरू फिर वही खाली हाथ रह गये थे।

भूखा साबिर नरसों के जलसे में अशफाक की तकरीर का जोशीला हिस्सा याद करता जा रहा था। बताशे ? ख्वाब हैं।

बम टिपा टिपटिप.. बम टिपा टिपटिप...

मोहन राकेश

हवामुर्ग

अप्रैल के महीने मे बर्फ का पडना अस्वाभाविक नही था, फिर भी रेस्ट-हाउस का चोकीदार संतराम सवेरे से कितनी बार मिलने जाने वालो से कह चुका था, "देखो जी, कैसी अनहोनी बात हो रही है ? ये कोई बर्फ पडने के दिन है ? मेरा ख्याल है, इसका आज के इलेक्शन पर जरूर असर पडेगा। घर से निकलना ही मुश्किल है, वोट देने कौन आएगा ?"

वैसे उसे स्वय विश्वास नही था कि लोग वोट देने नही आएगे पर बार-बार यह बात कह कर उसे कुछ संतोष का अनुभव अवश्य होता था। तीन बजे के लगभग एक भारी-भरकम बाबू रेस्ट हाउस के दो नबर कमरे मे आ कर ठहरा, तो उसका सामान खोलते हुए भी उसने कहा, "बाबू जी, आगे कभी अप्रैल के महीने मे आपने इतनी बर्फ पडती देखी है ?"

पर इससे पहले कि वह बात के उत्तरार्ध तक पहुंच पाता, बाबू ने उसे आदेश दिया कि वह भाग कर उसके लिए एक गिलास गर्म पानी ले आए, क्योकि उसे दात साफ करने है। संतराम 'अभी लाया जी कह कर चला गया और जब वह लौट कर आया तो बाबू ने उसे चाय बना कर लाने का आदेश दे दिया।

चाय ला कर प्यालों में उंडेलते हुए संतराम ने दूसरी बार बात आरंभ की, "बाबू जी, आज यहाँ पर म्युनिसिपल कमेटी का इलेक्शन हो रहा है," और अपनी बात में बाबू की रुचि जाग्रत करने के लिए उसने तत्परता दिखलाते हुए पूछा, "चीनी एक चम्मच लेंगे, कि दो चम्मच ?"

"डेढ़ चम्मच ?" बाबू ने बिना जरा भी रुचि प्रदर्शित किए कहा।

संतराम ने चाय में चीनी मिलायी और प्याली बाबू के हाथ में देते हुए कहा, "इस बार हमारे रेस्ट-हाउस का जमादार भी हरिजन टिकट पर इलेक्शन के लिए खड़ा हुआ है।"

"अच्छा !" बाबू ने चाय का घूंट भरते हुए कहा, "देखो, वह जो मेरे जूते रखे हैं, उन पर जरा पालिश कर देना।"

संतराम बैठ कर जूतों पर ब्रश से पालिश लगाने लगा। पालिश लगाते हुए उसने कहा, "पर जी, न तो वह जमादार ज्यादा पढ़ा-लिखा है और न ही वह कभी जेल गया है, वैसे भी जात का भंगी है—भला ऐसे आदमी का कमेटी के लिए चुना जाना कहाँ तक मुनासिब है ?"

बाबू बिना कुछ कहे अपना कंबल लेकर बिस्तर पर लेट गया और एक पुस्तक के पन्ने पलटने लगा। संतराम ने जूतों के फीते निकाल दिये और एक जूते को ब्रश से रगड़ता हुआ बोला, "वैसे जी, सब मेहतर इसे वोट दें, तो यह चुना भी जा सकता है। सरकार ने भी हद कर दी। जमादार कल तक कमेटी की नालियां साफ करते थे, अब जा कर कमेटी की कुर्सी पर बैठा करेंगे।"

वह जूता चमक गया था। उसे रख कर दूसरा जूता उठाते हुए उसने कहा, "आज अगर यह चुन लिया गया तो मेरे लिए तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। पहले ही हम दोनों की खटपट चलती रहती है, फिर तो एक दिन भी कटना मुमकिन नहीं होगा।"

कुछ क्षण वह चुपचाप जूते को रगड़ता रहा। फिर उसने फीता

डालते हुए बोला, "अगर आज यह चुना गया तो मै सोचता हू कि मै नौकरी से इस्तीफा ही दे दू। यह साहब अपनी इज्जत का सवाल है। क्या कहते है ?"

और बाबू के फिर कुछ न कहने पर उसने जूते बाबू को दिखलाते हुये पूछा, 'क्यो जी ठीक चमक गये?"

"हाँ, इधर रख दे," बाबू ने कहा, "और जा कर मेरे लिए एक कैप्स्टन की डिबिया ले आ।"

सिगरेट लाने का आदेश पाकर जब बाहर निकला तो उसने देखा कि जमादार की बीवी बंतो लान के पौधो से फूल तोड रही है। अभी तीन-चार दिन पहले उसकी बीवी शाँति ने बतो को फूल तोडने से रोका था। सतराम को लगा कि आज बतो जानबूझ कर उन्हे चिढ़ाना चाहती है। उसके मन मे क्रोध-मिश्रित खीज का उदय हुआ, पर उससे कुछ कहते नही बना। इसका एक कारण तो यही था कि आज उसे अपने मे बंतो से कुछ कहने का नैतिक साहस नही मिल रहा था, और दूसरा यह कि अपने नये रंगीन वस्त्रों में बंतो आज और दिनों की अपेक्षा अधिक सुन्दर लग रही थी। संतराम को जमादार माधो से इस बात की भी इर्ष्या थी, कि उसकी पत्नी इतनी सुन्दर थी और तीन बच्चो की माँ होते हुए भी अभी लडकी-सी ही दिखाई देती थी। दूसरी ओर उसकी पत्नी शांति थी, जो अभी एक ही बच्चे की माँ थी, पर लगता था, कि उसका यौवन दस साल पीछे रह गया है—सुन्दर तो खैर वह कभी थी ही नही। जब शाँति बंतो को कोई आदेश देती तो स्वय संतराम को उसका आदेश देना अस्वाभाविक लगता था, यद्यपि शाँति के शिकायत करने पर कि बतो बात-बात में उसकी अवहेलना करती है, वह उसके अधिकार का शाब्दिक समर्थन कर दिया करता था, परन्तु कभी शाँति बंतो की उपस्थिति में उसकी सिकायत करती तो वह निष्पक्ष मध्यस्थ की तरह कहता, "अरी, आपस में झगड़ती क्यों हो ! यह सरकार का काम है और हम सब का साझा फर्ज है। आपस

में मेल-जोल के साथ रहा करो।"

बतो के पास से निकल कर सतराम अपने क्वार्टर के आगे पहुँचा तो उसने देखा कि वहाँ शाति किसी वजह से बच्चे पर झुंझला रही है। उसके ढीले-ढाले अंग, फिर और भी ढीले ढाले वस्त्र, और उस पर यह झुंझलाहट का भाव देख कर सतराम का अपना हृदय झुंझलाहट से भर गया। उसका मन हुआ कि उसे डाँट दे, पर फिर कुछ सोच कर वह आगे बढ गया। सडक पर आकर भी उसकी झुंझलाहट शांत नही हुई। उसने बाबू के लिए कैप्सटन की डिबिया खरीदी और एक लैंप की डिबिया अपने लिए ले ली। एक सिगरेट सुलगाए हुए वह रेस्ट-हाउस की ओर लौटा। चलते हुए उसके मस्तिष्क में उन दिनो के धूमिल चित्र उभरने लगे, जब वह दिल्ली में बाबू गनपत लाल की थिएटर कपनी में नौकर था। वहाँ उसका काम बिजली की फिटिंग करने का था, पर दो-एक बार बाबू गनपत लाल उसे अभिनय करने का अवसर भी दे दिया था। उस कपनी में लगातार छह छह महीने वेतन नही मिलता था, पर फिर भी जिस दिन कपनी बंद हुई थी, उस दिन उसे यही प्रतीत हुआ था कि उसके जीवन का आधार छिन गया है। वेतन तो कही भी काम करने से मिल सकता था, पर थिएटर कपनी में जो कुछ मिलता था, वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ था। वहाँ भिन्ना थी, रूपी थी, सकीना थी। वह समय अब बारह साल पीछे रह गया। यह सोच कर उसे एक विचित्र-सी सिहरन का अनुभव हुआ कि भिन्ना की बेटी चंदा, जो तब आठ बरस की गुडिया थी, अब बीस वर्ष की नवयुवती होगी। उसके कदम कुछ तेज हो गये और वह इस विश्वास के साथ चलने लगा कि उसका वास्तविक क्षेत्र थिएटर कपनी ही है—वह यूही रेस्ट-हाउस की चौकीदारी के दलदल में फँस कर अपना जीवन नष्ट कर रहा है।

जब उसने दो नबर कमरे में पहुंच कर कैप्सटन की डिबिया बाबू को दी, तब भी उसका मन फिल्म कंपनी के वातावरण में खोया हुआ था। दियासलाई जला कर बाबू का सिगरेट सुलगवाते हुए उसने उससे

पूछा, "क्यों बाबू जी, आजकल उधर कही कोई थिएटर कंपनी नही चल रही ?"

"मुझे पता नही।" बाबू ने सिगरेट का कश खींच कर कहा।

"दरअसल बात यह है।" संतराम आवश्यकता न रहने पर भी झाडन उठा कर कुर्सी झाडता हुआ बोला," चौकीदारी मे तो मै ऐसे आ फँसा हूँ, वर्ना पहले मै दिल्ली मे एक थिएटर कंपनी मे ही काम करता था।"

"यहाँ तुम कब से काम कर रहे हो ?" बाबू ने पूछा।

यहाँ जी, मुझे कोई दस ग्यारह साल हो गये।"

"तो तुम यहा के बहुत पुराने आदमी हो।"

"जी हाँ।" संतराम ने ये शब्द स्वभाववश ही कह दिये। वैसे वहाँ का पुराना आदमी कहलाना उस समय उसे रुचिकर नही लगा।

'थिएटर कंपनी मे तुम कितने साल रहे हो ?" बाबू ने दूसरा प्रश्न पूछा। संतराम इस प्रश्न का निश्चित उत्तर अच्छी तरह जानता था। उस 'अपनी लाइन' मे उसने कुल एक साल और सात महीने बिताये थे, जिसमे से वेतन केवल आठ महीने का ही प्राप्त हुआ था। पर उत्तर देने मे पहले वह जैसे मन-ही-मन गिनती करने के लिए कुछ रुका और फिर बोला, "बस जी, यहा आने से पहले से वही था।" और उसके होंठो पर खिसियानी हँसी की रेखा प्रकट हो गयी।

कुर्सी को छोड कर अब अलमारी के शीशे झाडन से साफ करता करता हुआ संतराम अपने उन दिनो के अनुभव सुनाने लगा, तो बाबू ने उसे बीच मे ही रोक कर कहा कि वह जल्दी जा कर डाकखाने से दो लिफाफे और चार पोस्टकार्ड ला दे, उसे कुछ आवश्यक चिट्ठियाँ लिखनी है।

डाकखाने से लिफाफे और पोस्टकार्ड खरीदते हुए उसने और सुना कि जमादार माधो इलेक्शन जीत गया है, और कई लोग फूलों की मालाएँ पहना कर रेस्ट-हाउस की ओर ला रहे है। उसने लैंप का सगा

सिगरेट सुलगाया और बाहर आ कर उस दिशा में देखा, जिधर से बर्फ से ढके हुए रास्ते पर तीन-चार सौ गज दूर कुछ लोग जमादार माधो को घेरे हुए आ रहे थे। उनके रंगीन वस्त्र बर्फ की सफेदी के वैषम्य में और भी रंगीन लग रहे थे। वे बाहें उठा-उठा कर उत्साहपूर्वक नारे लगाते आ रहे थे। संतराम ने उस ओर से आते हुए एक नवयवक से पूछा, "क्यों भाई, कितने वोटों से जीता है हमारा जमादार ?"

"सवा दो सौ वोटों से !" और उस नवयुवक ने साथ यह भी बताया कि रात को बड़े साहब ने जमादार को खाने पर बुलाया है।

"अच्छा !" और संतराम की आखें विस्मय और ईर्ष्या से फैल कर रह गयी। उसने पुन उस दिशा में देखा, जिधर से लोग माधो के साथ आ रहे थे। वह क्षण-भर इस अनिश्चय में खड़ा रहा कि उसे वहां रुकना चाहिए या रेस्ट-हाउस की ओर चल देना चाहिए। फिर हाथ के कार्डों और लिफाफों की ओर ध्यान जाने पर वह जैसे बहाना पा कर रेस्ट-हाउस की ओर चल दिया।

बंतो क्वार्टर के बाहर खड़ी अपने पति को दूर से आते देख रही थी। उसके चेहरे की चमक उस समय और भी बढ़ रही थी। कुछ और भी जमादारिनें उसके पास खड़ी थीं। संतराम ने उसके पास से निकलते हुए उसे लक्षित करके कहा, "जमादारिन, माधो इलेक्शन जीत गया है। दो सौ वोटों से जीता है।"

उसने स्वर में यथासम्भव सौहार्द लाने की चेष्टा की थी, पर बंतो ने उसकी बात की ओर ध्यान नहीं दिया। वह उपेक्षापूर्ण ढंग से बोली, "हाँ, राजू अभी हमें बता गया है।"

संतराम मन-ही-मन कुछ उलझ कर दो नंबर कमरे की ओर चल दिया। जब उसने कार्ड और लिफाफे बाबू को दिये, तो उसे आदेश मिला कि यह वहीं ठहरे, अभी पत्र पोस्ट करने के लिए ले जाने होंगे। कुछ देर बाद जब वह पत्र ले कर निकला तब तक माधो के साथी, उसे लिये हुए रेस्ट-हाउस के सामने पहुँच गये थे और जोर-जोर से नारे

लगा रहे थे—"हरिजन यूनियन जिन्दाबाद" "माधो जमादार जिन्दाबाद।"

संतराम डाकखाने की ओर न जा कर पीछे के रास्ते से डेरी फार्म के लेटर-बक्स की ओर चल दिया, हालाँकि वह जानता था कि डेरी फार्म के लेटर-बक्स से दिन की अन्तिम डाक चार बजे ही निकल जाती है और उस समय साढे चार बज रहे थे।

दूसरे दिन सवेरे संतराम की पत्नी शाँति की सूरत कुछ और-सी हो रही थी—उसकी आँखें सूज रही थीं और चेहरे पर झाइयाँ-सा पड़ी हुई थी। संतराम चाय ले कर दो नंबर के कमरे में आया, तो चाय उँडेलते हुए उसने बाबू से पूछा, "क्यों साहब, जमादार कमरा साफ कर गया है?"

"उसकी बीवी साफ कर गयी है।' बाबू ने उत्तर दिया।

"मेरे बारे में उसने कोई बात तो नहीं की?" उसने कुछ आशंकित और खिसियाने स्वर में पूछा। 'नहीं!" बाबू ने एक शब्द में उत्तर दे कर चाय की प्याली उठा ली।

अब संतराम व्याख्या करता हुआ कहने लगा, "साहब आपको पता है न, कि जमादार कल इलेक्शन जीत गया है बड़े साहब ने कल रात को इसे और इसकी बीवी को खाने पर बुलाया था। पता नहीं इन लोगों ने वहाँ जा कर साहब के सामने मेरी क्या-क्या शिकायत की है! मैंने सोचा कि शायद आपसे भी जमादारिन ने इस बारे में कुछ कहा हो।"

"मुझसे किसी ने कोई बात नहीं की।" बाबू ने झिड़कने के स्वर में कहा।

संतराम कुछ क्षण चुप खड़ा रहा। फिर बोला, 'साहब मेरा स्वभाव ऐसा है कि मैं किसी से लड़ना-झगड़ना पसन्द नहीं करता। पर मेरी घरवाली का अपनी ज़बान पर काबू नहीं है। वही रोज-रोज जमादारिन से लड़ पड़ती थी, मैंने इसे कई बार समझाया पर वह समझी नहीं। रात को फिर मुझसे नहीं रहा गया। मैंने दो-चार हाथ

ऐसे लगा दिये है कि अब आगे के लिए सुधरी रहेगी।"

बाबू ने चाय की प्याली ट्रे में रखते हुए कहा कि वह ट्रे उठा कर ले जाए। सतराम ट्रे उठाता हुआ बोला, "अब तो बड़ा साहब भी जमादार की ही सुनेगा, क्यो जी ? उसने साहब के पास मेरी शिकायत कर दी तो बताइए मैं कहाँ का रह जाऊँगा। औरत जात इन चीजो को नही समझती। मुसीबत तो अब मेरी हो रही है, जिसकी नौकरी का सवाल है।"

ट्रे उठाये हुए वह बाहर निकल आया। बरामदे के सिरे पर उसे जमादार माधो झाड़ू देता हुआ मिला। उसके निकट पहुँचकर संतराम खीसे निपोर कर बोला, "क्यो भई, जीत लिया इलेक्शन माधोराम ? कल सुन कर बहुत ही खुशी हुई। हम गरीब लोगो की भी अब कमेटी में सुनवाई हो जाएगी। अब लगता है कि हाँ, सचमुच मे ही आजादी आयी है।"

और क्षण भर रुक कर जब और कुछ कहने को नही मिला तो वह ट्रे सँभाले हुए अपने क्वार्टर की ओर बढ गया जहाँ उस समय शांति एक हाथ से बच्चे को पकड़े हुए गालियाँ देती हुई दूसरे हाथ से उसे पीट रही थी।

महावीर अधिकारी

ढींगर

ढींगर उसका वास्तविक नाम नहीं था। नाम बताने की सुधि उसे थी ही नही। भीड से खचाखच भरे प्लेटफार्म पर जब वह अपने मा-बाप से बिछडा तो मा और बाप के अतिरिक्त जैसे कोई दूसरा शब्द उसे याद ही नही था। फक्-फक् करता हुआ इंजन जब उसके गला फाड-फाड कर चीखते रहने पर भी बेदर्दी के साथ गाडी को घसीट ले गया तो बालक जैसे दगडे में फेंकी गई सीपी के समान बेगनाह पडा रह गया। बिना किसी दर्द के व्याकुल लोगो की भीड मे वह कई बार कुचलते-कुचलते बचा। भीड कुछ हल्की होने लगी तो वह उसी तरफ भाग जिधर गाडी उसकी मा को ले गई थी। और वह अनजान बालक भागता-भागता न जाने कहाँ पहुंच जाता अगर शंटिंग करने वाले इंजन की दानवी चीत्कार को सुनकर उसका खून न जम गया होता। होश आते ही वह पलटकर पीछे भागा तो एक हलवाई के ठेले से टकरा गया। ठेले वाले ने कडक कर कहा, "अबे ओ ढीगर," क्या हथकडी डलवायेंगा मेरे हाथो में ? पैदा होते ही सैल को निकल पडते हैं कम्बख्त।"

और बिना कोई दान-दक्षिणा लिए ही इस दयावान पुरोहित को उस अनाथ बालक का नामकरण करने मे कोई दिक्कत नही हुई। पराए पूत को दुनिया ढीगर ही पुकारती है। यह ढीगर, रोते-रोते जिस की आँख सूज गई थी, चेहरा हलकान हो गया था, सहम कर एक ओर

हट गया। पर अब भी वह सुबक रहा था और उसके सत्वहीन कंठ से अब भी मा और बाप'दो ही शब्द निकल रहे थे। ठेला हाकता हुआ जब ठेले वाला बराबर मे आया तो उसने रहम खाकर बर्फी का एक टुकडा बालक के हाथ पर रख दिया। पर उसने वह टुकडा इस तरह जमीन पर फेक दिया जैसे कि वह मिट्टी का ढेला हो और जोर-जोर से रोने लगा। ठेलेवाले ने देखा बालक हलकान हो रहा है इस नाम करण करने वाले पुरोहित को ढीगर पर फिर दया आ गई। पीठ पर हाथ फेरते हुए उसने पूछा," अबे रोता क्यो है ? तू अपनी मा के साथ था, कहाँ है तेरी मा ?"

ढीगर ने सिसकते हुए कहा—"उसमे तल्री गई। रेल गाली में मेरी मा मुझे छोल गई।" माँ के बिना शायद हलवाई के लिए वह ढीगर निरा अपदार्थ था। बच्चे की पीठ पर रखा हुआ उसका हाथ ढीला पड गया। ढीगर पशु नही था जो दो वर्ष चारा-दाना खाकर पांच सेर दूध दे देता या हल में चलता या लादी ढोने लगता। आदमी का अश होकर भी उसका मूल्य ठेले वाले के लिए क्या था। वह क्यो तबालत अपने गले में डाले! उदासीन हलवाई ने आवाज देकर दस तमाशबीन और बुला लिए। सम्वेदना की उस हल्की-सी पीडा को उसने इस तरह हल्का कर लिया।

अब एक साथ कितनी ही आवाजें, भावनाहीन और खुश्क दिलो से निकलने वाली आवाजे उसे पूछ रही थी," अबे तू खो गया है, " ? ढीगर ने एक बार कहा " मै नही, मेली मा खो गई है" और इस मासूम जवाब को सुनकर सभी ठहाका मार कर हस लिए। आँखों मे आसू भरे वह टुकुर-टुकुर उस हृदयहीन भीड में अपने बापू का चेहरा खोजता रहा पर उसका बापू उसे मिला नही। तरह-तरह के प्रश्नो से बीध कर इन लोगो ने ढीगर को प्लेटफार्म पर घूमते हुए एक पुलिसमैन के हवाले कर दिया। अब वह बदनसीब ढींगर थाने पहुँचाया गया और दीवान जी के सामने जब उसकी पेशी हुई तो उनकी लम्बी खैरी मूछें देखकर

उसकी चीख निकल गई। दीवान जी ने चिढ कर पूछा, " अरे कहा से पकड लाऐ इस ढीगर को ?"

पुलिसमैन ने कहा, – "स्टेशन पर खडा रोता था। शायद खो गया हैं।"

"क्या नाम बताया हैं ?"

"बस यही जो आपने अभी पुकारा था। मा-बाप से बच्चा छूटा कि बस यही एक तो नाम हैं जो रह जाता हैं उसका। इसे नाम बताने का होश नही है दीवान जी"। पुलिसमैन की उक्ति मे थोडा व्यग था, जिसे दीवान जी ने समझने की परवाह ही नही की थी।

थाने में ढीगर का हुलिया दर्ज कर लिया गया। सावला रग, पतली टागे, बढा हुआ पेट, लम्बी नाक, माथे पर काला मस्सा, बडी बडी आखें और भारी सिर। उमं लगभग तीन वर्ष।

हुलिया तो दर्ज हुआ, पर अब क्या किया जाए उसका, यह एक समस्या थी। पर, थाना कोई धर्म महामात्यो का केन्द्र होता है, जो उसे वहा शरण मिलती ? क्यो कि वह गुनाहगार नही था। गुनाह था इसलिए थाने की हद से बाहर था। इस आशा में कि आजकल में उसे कोई खोजता हुआ आ पहुचेगा, थाने वालो ने ढीगर को स्थानीय आर्य समाज मन्दिर भेज दिया।

मन्दिर की बडी इमारत मे पहुंच कर छोटा ढीगर और भी अपदार्थ दिखाई देने लगा। मन्त्री महोदय ने सप्ताहिक सत्संग के अवसर पर सबको ढीगर की बदनसीब उपस्थिति की सूचना दी और उसके मा-बाप के आने तक उसे शरण देने की भी लोगो से अपील की। पर उसकी बडी-बडी आखें शिव के तीसरे नेत्र के समान भयानक थीं। पेट ऐसा कि जैसे कुबेर का कार्टून बना कर जमीन पर छोड दिया गया हो और सिर तो ग्लोब के तिरछे गोले के समान सधा हुआ था। सब कुछ मिला कर ढींगर एक अभिशप्त देवता के समान मालूम पड़ता था। और इस अभिशप्त देवता

को छूने का साहस पृथ्वी पर निवास करने वाले भला किस प्रकार करते।

सत्सग के शो-केस में अच्छी तरह पेश किए जाने के बाद भी ढीगर की तरफ किसी का मन जब आकृष्ट न हुआ तो निर्णय किया गया कि उसे अनाथालय भेज दिया जाय और जिस दिन यह निर्णय हो ही रहा था कि सयोग से वृद्ध महाशय रोशनलाल अचानक उधर आ निकले और ढीगर का हाथ पकड कर घर ले गए।

महाशय जी घर से गए थे परदेश के लिए कहकर और जब ड्योढी पर ढीगर को लेकर फिर नूमदार हुए तो उनकी अध्यापिका पत्नी चकित रह गई। पंडित रोशनलाल जी ने कहा,"लो,बहुत दिन से कहती थी,मेरी गोद खाली है, इसे रख लो"।

"ये क्या मसखरी सूझती रहती है आपको"? अध्यापिका जी बिगडी ,"किस जगलूल को पकड लाए हो ? कौन जात है"?

"जात क्या होती है। आदमी की जात है।"

"मुझे तो नीच जात मालूम होता है।"

"तब तो रख लो। तुम से जात तो मिल ही गई।' और इससे पहले अपने कुटिल वाक् प्रहारो से अध्यापिका जी अपने पति को बेहाल करती, वह अपनी रेशमी चादर को करीने से सवारते हुए फिर परदेश के लिए रवाना हो गए।

अध्यापिका जी ने ढीगर को इशारे से अन्दर बुलाया लेकिन ढीगर को साहस नही होता था कि वह अन्दर घुसे।

अंधेरे मे जब बुढ़िया की आँखे कम डरावनी लगने लगी तो वह चुपचाप उस की गोद मे जा बैठा। पहिले तो अध्यापिका जी सकपकाई, पर बच्चे का स्पर्श पाकर सहसा उन की भावुकता उभर आई। प्यार से उस के सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, "क्या नाम है तुम्हारा ?"

"लल्लू" ढीगर ने तोते की तरह टोक कर कहा।

"कहाँ से आए थे तुम ? तुम्हारी माँ तुम्हे छोड़ गई ?"

ढीगर ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का उपयोग करते हुए कहा, 'मेरी माँ खो गई, उसे सिपाही पकड कर ले गया। हम दिल्ली गए थे हमने मन्दिल देखा और गुब्बारे लाए। तुम भी हमें गुब्बारा दिलाओगी ?"

ढीगर की वाक्पटुता देख कर वृद्धा का मन हुलस आया। बोली, "अरे तू बडा होशियार है। आज से तेरा नाम हुआ बालचन्द्र ! समझा ? तेरा नाम है बालचन्द्र।"

और फिर सोचने लगी क्या यह हो सकता है कि यह बालक मेरे बुढापे की टेक बन जाए। अपने तो सभी छोड कर चले गए। आज तो ऐसा लगता है कि कभी किसी ने इस कोख से जन्म ही नही लिया।

बालक अपना नाम बार बार दोहराता रहा और अध्यापिका जी का अतीत चलचित्र के रील की तरह उन के मानस पट पर घूमने लगा। उनका भी एक लडका था। बहुत ही होनहार शीलवान और साधु स्वभाव। जब वह पढ-लिख कर बडा हुआ तो उस का विचार हुआ कि वह भारत की खोई हुई योग-विद्या का पुनरुद्धार करेगा। चुनाँचे उसका सारा जीवन उसी साँचे मे ढलने लगा। अध्यापक रोशनलाल लडके के आचरण को देखकर जितनी उस की बडाई करते मा उतनी ही लडके के रंग-ढंग देखकर अन्दर ही अन्दर कुढती रहती। एक दिन अवसर पा कर वह लडके से बोली, "क्यो रे गोपाल, तूने पढ लिख कर यही सीखा है कि दिन भर पेड पर मिट्टी लपेट कर लेटा रहा करे। कुछ कमाने-धमाने की फिक्र नही करनी है ?"

लडके ने विनम्र स्वर में अपना मन्तव्य मा के सामने रख दिया। बेटे की बात सुन कर मा की आखो में शोले बरसने लगे। बोली, "अपने बाप की चाल ही चलनी है तो जगल मे जा धूनी रमाओ।"

लडका बात टालने के लिए चुपचाप उठ कर बाहर चला गया। मा ने सोचा यह सब दिमागी फितर इस लिए है कि कन्धे पर कोई दायित्व नही है और दायित्व सौपने के लिए उन्होने लडके का रिश्ता करने का पक्का इरादा कर लिया और एक जगह रिश्ता तय भी कर

लिया। दहेज में दो हजार नकद भी ठहरा लिए। गोपाल से यह बात छिपाई जा न सकी। जब लडकी वाले गोपाल को देखने आए तो उस की शिराएँ क्रोध से फडकने लगी और वह मा से बोला, 'मा, आप को तो मालूम था कि मैंने अभी विवाह न करने का निश्चय किया था।"

"आखिर विवाह न करने का क्यो निश्चय किया है ? क्या दुनिया के लडके वही करते हे जो तुम करते हो ?"

"दुनिया के लडके चाहे जो कुछ भी करते हो, लेकिन मै तेली के बैल की तरह गृहस्थी के चक्कर मे नही फसूगा। अकेला रह कर कुछ काम करना चाहता हूँ।" लडके ने तमक कर कहा।

"गृहस्थ धर्म से और अच्छा क्या काम हो सकता है ?" माँ ने पूछा।

"लेकिन मैने शादी न करने का निश्चय कर लिया है। बस, मैं इससे आगे कुछ नही कहना चाहता।"

"देखती हूँ तू कैसे नही करेगा शादी। या तो मेरी लाश निकलेगी इस घर से या तू शादी करेगा" और फिर बिलखती हुई कहती रही, "हाय री दुखियारी मा, नौ महीने पेट में रखो, रात-रात भर जाग कर इन्हे पालो-पोसो और जब वह समर्थ हो जाएँ तो माँ की एक बात भी नही रख सकते।"

मा के क्रोधी स्वभाव से गोपाल परिचित था, उन की इस उद्विग्नता से वह घबरा गया। स्वय निराश हो कर भी वह अपने कर्त्तव्य को भली भाति पहचानता था। विनम्र स्वर में बोला, 'मा, आप तो नाहक ही जी हल्का करती है। आप का बेटा कठोर से कठोर धर्म का पालन करने को तत्पर है। पर तुम्ही ने तो सिखाया है कि व्यक्ति-धर्म राष्ट्र-धर्म और समाज-धर्म इन तीनों को निबाहने योग्य जो होता है उसे ही गृहस्थ धर्म में प्रवेश करने का अधिकार है। मै आप के चरणो की सौगन्ध खा कर कहता हू कि जिस दिन मै

अपने को इस योग्य समझूगा शादी अवश्य करूगा।"

लेकिन माँ की जिद थी कि पुत्र को यही रिश्ता स्वीकार करना होगा। अच्छे दान दहेज के साथ बहू भी लाखो में एक थी। गोपाल ने माँ की जिद देख कर कातर स्वर मे कहा, "मुझे इतना-सा भी अधिकार नही देगी ? सतान को क्या अपना भला-बुरा देखने का कुछ भी अधिकार नही होता ?"

और इतना कह कर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही गोपाल चुप-चाप उठ कर चला गया। रिश्ते वाले लौट गए लेकिन गोपाल घर से एक बार जो निकला तो फिर लौट कर नही आया। बहुत मुद्दत बाद अध्यापिका जी को किसी दूर पहाडी प्राँत से एक समाचार मिला, जिसमें उनके पुत्र के आत्म हत्या करने की खबर थी। पत्नी के तीखेपन मे अध्यापक रोशनलाल यो भी घर से बाहर रहना पसन्द करते थे। अब की बार लौट कर आए तो फिर ऐसे गए कि विक्षिप्तावस्था में ही लौट कर आए। उस दिन से अध्यापिका के जीवन का वास्तविक संघर्ष प्रारम्भ हुआ। विवाह के साथ वह निपट निरक्षरा थी। अपने अध्यवसाय से उन्होने पढाई लिखाई करके पढाना शुरू किया पति का इलाज कराया और परिवार का पालन किया। एक के बाद एक करके सभी सतानें उनकी गोद सूनी करके चली गईं। लडकी बची थी सो विवाह के बाद वह भी अपने घर चली गई। ढीगर को देख कर उनका अतीत आँखो के सामने मूर्तिमान हो उठा था। इस अपरिचित अनाथ के लालन-पालन मेवह वह पुरानी भूल को दोहराना नही चाहतीं थी।

इस घर मे आकर ढीगर ने विरासत मे जो इतिहास पाया था वह विपदावो और आघातो से भरा इतिहास था। ढीगर जब अध्यापिका जी की गोद में जा कर बैठा तो वृद्धा की गोद उसे पुआल और पत्ती की तरह सख्त और चुभती हुई मालूम पड़ी। न उस गोद मे खुमारी से भरी सुख की नीद थी और न रोम-रोम को पुलका देने वाली स्नेह की ऊष्मा।

अध्यापिका जी ने ढीगर को सामने बैठाकर दिन भर का कार्यक्रम समझाया,"देखो, बहुत सबेरे उठना, शौच वगैरा जाना,मिट्टी और साबुन से हाथ साफ करना। मंजन और स्नान करना। इसके बाद पढ़ने बैठना है.. ... ऐसा नही करोगे तो पिटोगे। खूब पढना,हा ..पढ-लिख कर तुम्हे बडा आदमी बनना है। बालचन्द्र। और मा के लिए ढेर से रुपये कमा कर लाना है". .उनकी आखो में पानी झलक आया था।

ढीगर उर्फ बालचन्द्र ने सभी कुछ स्वीकार कर लिया। एक होनहार बच्चे की तरह वह दिन भर का कार्यक्रम पूरा करने लगा। उसका हाथ पकड कर वह उसे बाहर ले जाती तो विचित्रता से भरे उस बालक को देखकर दूर गली में जाते हुए लोग भी रुक जाते और अध्यापिका जी से चार बाते करना चाहते।

एक दिन जब अध्यापिका जी बालचन्द्र को लेकर बाहर जा रही थी, एक पडौसिन बोली, " अध्यापिका जी, बालक बडा रोगी-सा है। देखो तो इसका पेट। गोद भी अपने लिया तो यह ढीगर।"

अध्यापिका जी अपने स्वभाव के विपरीत क्रोध को पीकर आगे तो निकल गई पर उन्होंने हाथ से ढीगर को इस तरह झटका दिया कि जैसे उसका पेट ऊपर से लगा हुआ है और झटका खाकर गिर जाएगा। पर वैसा हुआ नही। अध्यापिका जी ने ढीगर के व्यस्त दैनिक कार्यक्रम में कठोर व्यायाम और बढ़ा दिया।

ढीगर अब बहुत थकने लगा। बढे हुए पेट के कारण उसे खाने की अपेक्षा उपवास ही अधिक मिलता।

परिणाम यह हुआ कि सडक पर पडे जूठे पत्ते, रोटी, दाने,-तुनके सभी उसके पेट में जाने लगे और इस जघन्य अपराध का एक ही इलाज अध्यापिका जी को मालूम था कि उसे कठोर दड दिया जाए।

दड और अनुशासन ज्यो-ज्यो सख्त होता गया बालचन्द्र उतना ही ढीठ और अपराधी होता गया। अध्यपिका जी उसके एक के बाद दूसरे कुलक्षण को देख कर कई बार खुद रो उठती। मारते-

मारते तो उसके हाथ दुखने लगे थे। उनकी समझ में आता ही नहीं था कि वह डेढ पसली का छोकरा कैसे इतनी मार खाकर भी फिर फिर अपराध करता जाता है।

एक दिन ढीगर ने गजब कर दिया। पूजा का दिन था। अध्यापिका जी ने पकवान बनाया। रसोई का ताला लगाकर बाहर किसी काम से गई। पर ताली साथ ले जाना भूल गई। ढीगर उठा उसने ताला खोला और ढेर-से लड्डू कचौडी लेकर दुबक कर खाने लगा। घबराहट से किवाड खुले रह गये। चौके मे रखा हुआ खाना कुत्ते न खराब कर दिया।

अध्यापिका जी ने लौटकर देखा तो क्रोध से पागल हो गई। और ढीगर पर इतनी मार पडी कि उससे उठा भी नही गया। खाट से बधा हुआ ही छटपटाता रहा और तडप-तडप कर खाना मागता रहा पर अध्यापिका जी का दिल फिर भी न पसीजा। शाम को इतना तेज बुखार ढीगर को चढा कि उसका शरीर तवे की तरह तपने लगा।

अध्यापिका जी ने अपने ही सिर पर दोहत्तड मार कर कहा, "लो, मिजाज देखे इसके! जरा छू दिया कि बस। अरे ऐसी ही किसी पद्मिनी का जाया था तो कम्बख्त मेरे सिर क्यो मरा आकर।" पर अनुशासन का चक्र फिर भी उन्होने ढीला नही किया। गोपाल पर उन का बस न चला, पर इस ढीगर पर वह अपने पूरे व्यक्तित्व को बिना परखे नही छोडेगी।

खैर किसी तरह हल्की-मोटी दवा-दारू खाकर ढीगर उठ बैठा। अध्यापका जी ने मारा तो नही पर पढ़ाई-लिखाई मे जब उन्होने ढीगर को कोरा का कोरा पाया तो अपने भाग्य को धिक्कारती हुई बोली, "मैने देख लिये तेरे लच्छन। अरे अगर पढेगा-लिखेगा नही तो क्या नुमायश में रखूगी तुझे ढीगरे ?

अध्यापिका जी का अनुशासन चक्र और दड विधान इतनी तेजी से चलने लगा कि पड़ौसी तक त्राहिमान कर उठे। एक दिन जब अध्या-

पिका जी उस पर चटाचट चपत बरसा रही थी तो एक पडौसी उनके घर में आया और कहने लगा,',अध्यापक जी इस अनाथ बच्चे को आप इतना सताती है कि देखा नही जाता। उसकी बिसात देखकर ही तो दड देना चाहिए।

अध्यापिका जी फुंकार कर बोली, "तो इसे चोर-उचक्का बना दूं ? आपको तरस आता है तो ले जाइए न। ले जाकर गद्दी पर बिठाइए।"

"हम क्यो ले जाए ? उत्तराधिकारी की तलाश तो आप बरसो से कर रही थी। आपसे यह नही हुआ कि अपनी लडकी के किसी बच्चे को बुला लेती। हम सच कहते हैं आपके घर से अच्छा तो ये किसी अनाथाश्रम में ही रहता।"

'मुझे तो सारे घर अनाथाश्रम ही दिखाई देते हैं। जैसे चोर-उचक्के और धोखेबाज आज की लड़कियाँ-लडके हो गये हैं वैसे तो त्रिकाल में भी देखे सुने नही गये और सुनिए छगनलाल जी, आप जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर आईए कि मै इस ढीगर की हत्या कर रही हूं और आप मे अगर हौसला हो तो यही से ले जाकर अपने रहीसजादो में इसे मिला लीजिए।"

पडोसी महाशय अपना-सा मुँह लेकर चले गये। पडौसी लोग इतने ही दयावान होते तो बाजार में अनाथो की इतनी बडी तादाद होती ही क्यो। बात साफ थी।

और अगर ढीगर को मालूम होता कि उस घर से निकल कर उसकी हालत कैसी हो सकती है, उसे कूड़े-कचरे से भी अन्न के दाने बीन बीन कर पेट की भूख मिटाने पर मजबूर होना पड सकता है, वर्षा शीत अधड और तूफान सभी स्थितियों में उसे कही पनाह नही मिलेगी चाहे वह रोता-रोता पागल हो जाए, उसे सीने से लगा कर कोई भी प्यार नही करेगा, तो वह बूढी मा को खुश करने की कोशिश करता। मार खाकर भी प्यार करता। पर वह तो और भी बिगड़ता जाता था। अबोध, बदनसीब ढीगर।

अध्यापिका जी को विश्वास हो गया था कि वह अनाथ ढीगर सुध-रेगा नही। वह इतना विद्रूप और भयानक हो गया था कि एक दिन खुद अध्यापिका जी उसे अधेरे मे ऊदबिलाव समझ कर चीख उठी।

ढीगर जैसे समाज और मनुष्यता के नाम पर एक फोडा था जो तिल-तिल करके रिस रहा था। अध्यापिका जी ने एक दिन भी यह नही सोचा कि उस ककाल मे भी कही जीवन की लालसा है उसमे भी कही मानवता स्पदित होती है। वे उसे मारती भूख रखती, खुद कलपती और उसे भी कलपाती। पर ढीगर कभी सुधरने का नाम न लेता।

एक बार अध्यापिका जी बीमार पडी। ढीगर को थोडी आजादी मिली। जीवन और प्रकाश स्वधीनता के उल्लास ने उसके अग-अग मे स्फुर्ति भर दी। वह खटिया से उठता पडोस में जाता,पानी गर्म कराकर लाता,पुस्तक उठाकर अपना सबक याद करता,आगन मे फुदक-फुदक कर अनेक बाल लीलाए करता। कराहती हुई मा का सिर दबाता और जहा से आया था वहाँ के बाग बागीचो गायो और गोहरी की बाते करता। कुछ झूठी और कुछ सच्ची सभी तरह की बाते करके मा को खुश करने की कोशिश करता। एक दिन अध्यापिका जी हुलस कर बोली' अरे बद-नसीब बालचन्द्र जो तू हमेशा ऐसा रहे तो तेरा नसीब न खुल जाय।" ''ढीगर की परिचर्या का प्रभाव था या उसके दुर्भाग्य का कि अध्यापिका जी जल्दी ही बीमारी से उठ बैठी। हुआ यह की बीमारी की खबर पा-कर उनकी लडकी सुषमा कुशल-क्षेम पाने के लिए मा के घर चली आई। साथ ही आए उसके चार बच्चे। लडके लडकी सभी सुन्दर,गोरे,गदरारे इशारे पर काम करने वाले। पर ढीगर की छाया ऐसी पडी कि वे तेजी से बिगडने लगे। मा की देखा देखी बेटी भी बच्चो पर चटाचट चपत जड़ने लगी।

एक दिन किसी कसूर पर ढीगर मार खा रहा था। तो बेटी बोली "इतनी बेदर्दी से मारोगी तो एक दिन खून लगेगा तुम्हारे सिर। आखीर इसके जी में जी नही है ?"

तो अध्यापिका जी बोली,' इसके लच्छन देख रही है ? ऐब करेगा तो क्रोध किसे नही आएगा । तू ही अपनी बात नही देखती इतने अच्छे बच्चो को भी मार बैठती है ।"यह देख कर सुषमा, जो महीना भर रहने आई थी, १५ दिन ही मे भाग खडी हुई।

पर न ढीगर बदला न अध्यापिका जी बदली । अब ढीगर को डाक्टर ने आतो की यक्ष्मा भी बतला दी है । अध्यापिका जी अब हर समय अपना भाग्य कोसती रहती है । ढीगर की हालत अजीब है ।वह न अच्छी तरह उठ सकता है न चल फिर सकता है । दिन भर सीलन और बदबू से भरे बन्द मकान मे कैद रहता है बाहर गली मे बाजे बजते है, शहनाइया बजती है, उत्सव होते है रग-रलिया होती है लेकिन ढीगर के जीवन मे एक ही रस ह। मार खाना और अपराध करना। अपराध करना और मार खाना ।

कभी कभी वह पडोस के रेडियो पर गाये जाने वाले गीतो को दुह-राता है तो बडा विचित्र लगता है । बडे फख्र से वह कहता है,"झडा ऊचा रहे हमारा,हम स्वतन्त्र देश के स्वतन्त्र बाल है।"पर असल मे उसके मा-बाप नही है, इसलिए उसका कोइ देश भी नही है और न उसका कोई राष्ट्र है । जो गर्व भरे गीत को सुनकर अपने वक्ष पर उसे धारण करे ।

प्यार और मनुहार की सभी बाते वह भूलता जा रहा है। वह सब कुछ भूल गया है । अपनी मा को अपने बापू को और अपनी धौली गाय को भी। उसी सीमित चारदिवारी मे उसके सूरज और चाद निकलते है । उसे चिढाने के लिए गली के बच्चे तरह तरह के बाजे बजाते हुए अपने रग-बिरगे गुब्बारे उसके फाटको मे लगा देते है उन्हें छू भर लेने के लिए ढीगर फाटको से चिपट जाता और वही ढेर हो जाता है । पडोसी लाला जी की छोटी मुन्नी रागिनी रग-बिरगे फ्राक पहने फाटक पर आकर जब पूछती है,"ओ बालें तू कब अच्छा होगा ?" तो बाले यनी बालचन्द्र उर्फ ढीगर हमेशा ही कहता है,"मे तो अच्छा हू रागिनी । अम्मा मुझे बाहर जाने नही देती ,मारती है, खाना नही देती ।"

ऐसी ही शिकायतें ढीगर मौका मिलने पर दूसरे लोगो से भी करता है। अध्यापिका जी ने अब यह निश्चय कर लिया है कि औलाद का सुख उनके भाग्य में बदा ही नही है। जब उनकी अपनी औलाद उन्हें दगा दे तो यह दूसरे का खून उनका कैसे साथ देगा। बस अध्यापक जी लौट कर आ जायें तो वह उसे एक क्षण भी घर मे न रहने देगी। जाय जहाँ उसे जाना हो और जहा उसके लिए अन्न,भोजन का भण्डार खुला हो।

श्रीमती रजनी पनिकर

एक पत्र

तुम्हारा पत्र आज तीन दिन बाद मिला। तुमने लिखा है कि मैं तुम्हारे लिये पत्र के ऊपर सम्बोधन नहीं लिखती। पर उससे क्या ? पत्र तो लिखती हूँ। रोज शाम को घर आकर मेरा यही काम है कि तुम्हे पत्र लिखूं। वह पत्र तुम्हे दूसरे दिन मिल जाता है। मेरी हर सास डाक के इस सुप्रबन्ध के लिए लाख-लाख धन्यवाद देती है।

हाँ, तो तुम्हारा पत्र इस बार भी नीरस है, न जाने क्यो तुम ऐसे रूखे-सूखे पत्र लिखते हो ! तुम्हारे पत्र मुझे उन बेजान रूखे नीम के पत्तो की याद दिला देते हैं, जो हम गरम कपड़ो की तह में से सर्दियां आने पर निकालते हैं। तुम्हारे पत्र से ऐसा लगता है जैसे मे तुम्हारी पत्नी नही केवल सहचारिणी मात्र हूँ।

आज बरसात है, वर्षो पुराने ठूंठ में नए कोपल फूटे हैं। मेघ-मालाओ का गर्जन सुन यदि मेरे हृदय की धड़कने बढ जाएँ तो उन्हे मै कैसे दोष दूं। प्रकृति का हरा श्रृंगार यदि मेरे अन्तर में टीस भर दे और आँखो के आँसू आँखो मे ही तुम्हारी आकृति को धो डालें तो मै क्या करूँ ? मेरे पास केवल एक ही साधन रह जाता है कि मै तुम्हारे पत्र पढने लगू। मुझे सिगरेट पोने की आदत नही है कि उसी के धुंए में अपने हृदय के हाहाकार को छिपा लू। और शायद तुम सहन भी न कर सको कि तुम्हारी पत्नी सिगरेट पीए।

तुम कम-से-कम ढंग के पत्र तो लिख ही सकते हो। मै तुम्हे कवि कालीदास का चारण तो नही बनाना चाहती, जो अपनी प्रिया का बादल के हाथ सदेश भेजता है, लेकिन फिर भी इतना जरूर चाहती हू कि तुम कुछ ऐसा लिखो जिस से जमा हुआ खून बहने लगे। जानते हो अनुभूति जब सजग होती है तो उसके साथ पीडा और कसक होती है और कराह अपने आप निकल जाती है। शायद तुम इस कराह से परिचित नही, तभी तो उसे व्यक्त नही कर पाते।

नारी भी क्या है, कृष्ण ? मै सोचती हूँ नारी की आस्था ने ही पुरुष को मनुष्य रूप में भी भगवान का सम्बोधन दिया है। पुरुष को और कोई देवता कह कर पुकारता है ? मानते हो नही। केवल नारी। मै भी नारी हूँ कृष्ण, और साथ मे तुम्हारी पत्नी, मै तुम्हे नित्य नये सम्बोधन देती हूँ, तुम्हारी तरह रोज-रोज वही घिसा-पिटा 'प्रिय विमला' ही नही।

तुम्हे याद होगा आज से तीन बरसाते पहले हमारा विवाह हुआ था। विवाह से पहले केवल एक वाक्य तुमने ऐसा कहा था जो मुझे भुलाये नही भूलता, आज भी याद है। तुमने कहा था 'विमला तुम्हारी इन सुकुमार सुरमई आखों मे स्वयं को बसा देखता हूँ तो लगता है कि मरणासन्न रोगी को समय पर पथ्य और दवा मिल रही है। आशा होती है जी जायगा।" तुम्हारे इसी एक वाक्य ने मेरा भविष्य निश्चित कर दिया था। तुम्हारी माता जी के विरोध करने पर भी हम एक सूत्र में बंध गये थे। अभी केवल तीन ही वर्ष तो हुए हैं।

पहले दो वर्ष तो बहुत अच्छी तरह कटे थे। हसी-खुशी की लहर, मुस्कराहटो का मेला ! लगता था, जैसे स्वर्ग के सारे सुख सिमट कर हमारी सासों में आगये थे। उतनी खुशी में भी तुम्हारे ओंठ सटे रहते ,तुम खामोश मेरी ओर देखते रहते। तुम्हारी वह खामोशी मुझसे सब कुछ कह देती। सम्पृक्त क्षणो की उस मधुर स्मृति को स्मरण कर अब भी मै अपने को फुठला लेती हूँ।

तुम लिखते हो तुम्हारे अफसर तुम से बडे प्रसन्न रहते है, तुम काम बहुत अच्छा करते हो । यह पढ कर मुझे प्रसन्नता हुई, इसमें सदेह नही। अब तुम्हारे पत्र के चार पृष्ट केवल इन्ही बातो से भरे रहते है कि तुम क्लब में गए तो कौन मिला, दफ्तर मे क्या-क्या बात हुई, दोस्तो के साथ तुम पिकनिक पर चले गए, अमुक जगह तुम पार्टी में सम्मिलित होने गए, तो जानते हो मुझे क्या लगता है ? मै अभाव से भर उठती हूँ। मेरा अभाव एक बहुत बडा रूप लेकर मुझ पर वैसे ही छा जाता है जैसे एक दिन पुरानी दुल्हिन पर लज्जा का आवरण। वह लज्जा उसके लिए मीठी होती है, पुलक भरी होती है, परन्तु यह अभाव मेरे लिए घनीभूत अतृप्ति छोड जाता है। उसका अभास भी तुम्हे हो पाए तो मै अपने को सौभाग्यशाली मानूंगी। तुम कहोगे यह मै क्या बे-सिर पैर की बातें कर रही हूँ, पर यह सच है कृष्ण, तुम अपने ही मे इतने पूर्ण हो, तुम नही समझ सकोगे। यह उलहना नही है, यह मेरे हृदय की सच्ची वेदना है।

तुमने पढाई के लिए कर्ज लिया ठीक है, तुम शिक्षित न होते तो इतने बडे अफसर कैसे बनते और फिर मुलाकात कैसे होती ! यह शिक्षा तुम्हे तो महगी पडी ही, परन्तु उसका जो मूल्य मुझे चुकाना पड़ रहा है, वह बहुत अधिक है। मैने कभी यह नही सोचा था कि तुम से दूर रह कर मेरी हालत ऐसी होगी। अब तो एक वर्ष होने को आया, तुम छुट्टी लेकर यहाँ आए थे, वह केवल एक सप्ताह ही तो था। तुम्हे अपने दोस्तो से मिलने-मिलाने से ही फुर्सत नही मिली। साल भर में एक सप्ताह क्या होता है ? सच तुम...तुम जब मिलते हो, तब भी तुम्हे कुछ नहीं कहना होता। तुम बहुत होगा तो यही लिखोगे कि मै छुट्टी ले कर तुम्हारे पास चली आऊँ, परन्तु उस में भी रुपया खर्च होता है और मै किसी भी प्रकार की फिजूलखर्ची नही करना चाहती, जल्द-से-जल्द तुम्हारा कर्जा निपटा देना चाहती हूँ। तुम अपने पत्रो को इतना रूखा न लिख कर जरा कोमल बना सकते हो। मै यहाँ अकेली हूँ। सखियाँ भी है

एक-दो। उन्हे देखती हूँ तो तुम्हारी याद और भी खलने लगती है। प्रेमा दिन भर काम करते-करते बीच-बीच मे अपने बच्चे की बात सुनाती रहती है। शाम को घडी की सुई अभी पाच पर नही पहुँचती कि उसके पति उसे घर ले जाने के लिए आ जाते है। है तो बुरी बात, परन्तु उन दोनो को इस तरह इकट्ठा जाते देख मै ईर्ष्या से भर उठती हू। काश! हम भी इस तरह इकट्ठे होते। पर ऐसा भाग्य लेकर मै पैदा नही हुई हूँ। जितना समय मै दफ्तर मे काम करती रहती हू, वह तो ठीक व्यतीत होता है परन्तु जब काम नही रहता...जब म घर आ जाती हूँ तो चार दीवारी के सिवाय और कुछ नही रह जाता। उस समय अपने को स्मृतियो मे भुलाए रखना भी कठिन हो जाता है, तो मै तुम्हारे पत्र खोल कर पढती हूँ। रात को नीद नही आती तो भी तुम्हारे पत्र मेरा सहारा होते है। तुम इन पत्रो को इतने निर्मोही ढंग से लिखते हो जैसे तुम्हे मुझसे कोई मतलब नही कोई लगाव नही, कृष्ण, ऐसा मत समझना कि मै तुम्हारे हृदय के भावो से परिचित नही, परन्तु मै नारी हूँ और नारी कुछ बातो मे अभिव्यक्ति चाहती है।

मौन स्नेह वही तक अच्छा होता है जब देनेवाला और लेनेवाला पात्र एक-दूसरे के पास हो। एक स्नेह-सिक्त पत्र जिस से मुझे यह आभास मिले कि तुम भी मुझे याद करते हो, मुझे कितनी सान्त्वना दे सकता है। जाने इतना पढ लिख जाने के बाद भी तुम्हे पत्नी को प्रेम पत्र लिखना क्यो नही आया? मेरा हृदय तुम्हारे प्रेमपत्र के लिए तडप उठता है। सुनो, एक बात सूझी, बुरा न मानो तो मै तुम्हे उदाहरण के लिए एक पत्र लिख कर भेजती हू, उसी तरह का स्नेह-भरा पत्र तुम मुझे लिखना। तुम ऐसा ही पत्र लिखने मे अपने को असमर्थ पाओ, तो यही पत्र तुम अपने हाथ से कागज पर उतार कर मुझे पोस्ट कर दो, तुम नही समझ सकते यह पत्र मुझे कितना सुख, कितनी शान्ति देगा!

विमला,

तुम्हारे दो पत्र आज मिले परन्तु उनसे मेरी तसल्ली नही हुई विमला ! इसमे सन्देह नही कि तुम स्नेह-पूर्ण पत्र लिखती हो, फिर भी मुझे यह जीवन अधूरा लगता है । सवेरे सो कर उठता हूँ तो तुम दिखाई देती हो, चाय पीता हूं, तो कड़वी लगती है क्योंकि तुम्हारे हाथ की बनी चाय मे और ही स्वाद है ।

विमला, सच मानो तुम्हारे बिना यह जीवन बिल्कुल सूना है। मै दफ्तर जाता हूँ, मन लगा कर काम करता हूँ, परन्तु काम करते में कभी -कभी तुम्हारी याद जैसे लेखनी की नोक पर आकर बैठ जाती है। वह याद के भार मे एक अक्षर भी और नही लिखती, तो मैं तुम्हारे पास पहुच जाता हू । तुम्हे अपने स्वागत मे मुस्कराते हुए पाता हूं तो मन ही मन प्रसन्न हो उठता हू कि हमारा जीवन सुखी है, उन दम्पतियो की तरह नही है जो प्रेम के नाम पर विवाह कर लेते हैं, परन्तु पीछे हर दम उनके घर मे कलह मची रहती है ।

विमला, तुम मुझे इतना मान देती हो कि मै कभी-कभी सोचता हू कि मे इस मान के योग्य हू भी ? विमला, जब मैं कभी पडोसी की पत्नी के खिलखिलाने का स्वर सुनता हू तो मुझे उसी क्षण तुम्हारा विचार आ जाता है ।

विमला, आज यह कर्ज न होता तो हमारी एक ऐसी दुनिया होती, जिसमें कृत्रिम वर्षा नही सुख की वर्षा होती, मुस्कराट के बादल आते। लखनऊ और दिल्ली मे गाड़ी मे एक रात का फासला है मैं एक विश्वास से उसे पार कर जाता हू ।

विमला, तुम्हारा बनाया नीबू का अचार मिल गया था, इस बार तो सचमुच बहुत चटपटा बना है। आम का अचार कब भेज रही हो, यही तो मौसम है न ?

तुम इस वर्ष की छुट्टी कब ले रही हो ? तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा में रहूंगा।

मधूर याद के साथ

कृष्णा

अब तुम्हारे अच्छे-से पत्र का प्रतीक्षा कर रही हूं।

तुम्हारी

विमला

बलराज साहनी

दिल मतलब कलेजा

आज स्टोडियो मे पैक-अप वक्त से पहले हो गया। मैने जल्दी-जल्दी मेक-अप उतारा और कपड़े तबदील किए। यह सोच कर खुशी हुई कि साढे पाच बजे तक घर पहुच जाऊगा। कमला तब तक वही होगी। दोनो सिनेमा देखने के लिए इकट्ठे आ सकेंगे।

कम्पनी के एक मुलाजिम को टैक्सी लाने के लिए रखा था। लेकिन उनके आने तक मूसलाधार बारिश शुरू हो गई। दो अपरिचित व्यक्तियो ने अन्धेरी स्टेशन तक लिफ्ट की दरख्वास्त की। ड्राइवर की तरफ मुतालबा हुआ कि मीटर के भाडे के अलावा १।। रुपया उसे ऊपर से दिया जाय। इस मौसम में दोनो मुतालबे मुनासिब मालूम पड़े।

फाटक पर दरबान ने गाडी का मुआयना किया, कहीं बिना परवानगी कोई फिल्म आदि बाहर न चली जाय। ड्राइवर को शायद यह दस्तूर पसन्द न था। व्यग-भरे लहजे मे बोला, "दो डिब्बे फिल्म के पीछे कैरीयर मे पडे है। वे भी दिखा दू ?"

उस की आवाज से पता चला कि उसने शराब पी रखी है।

मेरे साथी उस पर खफा हुए। वह गालिबन स्टूडियो ही के कर्मचारी थे। कहने लगे—"गोरखा अपनी ड्यूटी कर रहा है। तुम्हें उस के काम में दखल देने का क्या हक है ?" शह पा कर गोरखा भी गरम

हुआ। लेकिन मैंने बीच मे पड कर सुना कर कह दिया कि नशे की हालत मे आदमी बच्चे की तरह हो जाता है। कुछ हमदर्दी उसके साथ इस लिए भी हो जाती है कि उस की मौजूदगी में लोग अपने इखलाकी ऊचेपन की खाहमखाह नुमाइश करने लगते है—खासतौर से यदि वह निचले वर्ग का आदमी हो।

"सुनाओ दोस्त, खूब ठाठ से पी है न ?" मैंने ड्राइवर को आश्वत करते हुए कहा।

'थोडी पी है साहब, जास्ती नही। तुम फिकर नही करना साहेब," उस के अन्दाज मे वही अक्खडपन था।

मगर तुम दारू पी कर गाडी चलाते हो, यह कैसी हरकत है ?" एक साथी ने उसे फिर डॉटा "अगर ऐक्सी डेंट हो गया तो ?"

"देखो साहेब" ड्राइवर ने दोनो हाथ स्टीरिंग से उठा लिए। देखो कैसा चलता है हमारा गाडी ? अपना रास्ता खुद देख कर चलनेवाला गाडी है, देखो।"

अब तो हम तीनो का दम खुश्क हुआ। इस सडक पर अजीबो-गरीब ढग का ट्रैफिक होता है। शहर से बाहर का इलाका होने की वजह से मोटर लारी के अलावा गाये—भैसें तरकारी-सब्जी से लदे ठेले, दूध के बहँगे, और भी अनेक प्रकार के यातायात होते है। बरसात के कारण कीचड की भी कमी नही।

"देखो भैया! मैंने ड्राइवर से प्रार्थना की, अन्धेरी स्टेशन तक तुम खुद ही ड्राइव कर लो।' वहा हम उतर जायेगे। उस के बाद गाडी अपने आप चलती फिरे, हमे कोई एतराज नही।"

"अरे, तुम मरने से इतना डरता हे साहेब। एक दिन तो मरना ही है सब कू।"

समझ में न आया क्या जवाब दूं! इस आदमी का अक्खडपन जितना मेरे साथियो को बुरा लग रहा था उतना मुझे नही और खतरे की कोई खास बात भी न थी। यह लोग अपने काम में बडे होशियार

होते है। मैंने उससे कहा—

'मास्टर तुम्हें मौत से डर नही लगता ?"

"बिल्कुल नही। हम कू बस एक चीज का डर लगता है साहेब।"

"किससे ?"

"इससे, इस काले कौवे से।" उसने खिडकी से हाथ ब हर निकाल कर एक राह चलते पुलिस-मैन की तरफ इशारा किया। फिर ऊचे स्वर मे पुकारने लगा—

"सलाम सतरी साहेब, कुठे जणार ?"

सन्तरी ने एक क्षण क कर उसकी तरफ देखा, फिर चल दिया।

"साला" ड्राइवर ने कहा "हम उससे डरता है, वह हमसे घबराता है।" यह कह कर जोर से हंसा।

अन्धेरी स्टेशन के करीब वह दोनो व्यक्ति उतर गये। मुझसे भी ताकीद की गयी कि इस टैक्सी को छोड़ देना ही बेहतर होगा। लेकिन मैंने उनकी बात न मानी। एक तो वक्त जाया होता, दूसरा इस बेचारे की दिलशिकनी करना भी अच्छा नही लगा। मैंने सोचा—नशा उतरते ही बेचारा जाने किस हालत मे हो जायगा। उसके यह खुशी के थोड़े से क्षण मे क्यो खराब करू ? इन्हे हासिल करने के लिए न सिर्फ अपने पैसा ही खर्च किया है बल्कि दिनदहाडे कानून तोडकर अपने आपको भारी खतरे में भी डाला है।

लेकिन जब मोटर फिर चल पडी और ट्रैफिक में दो एक बार उस ने ऊटपटाग की तो मुझे अपने फैसले पर अफसोस होने लगा। मैंने सोचा,मध्यम वर्ग का आदमी भी बडा अजीब होता है। एक तरफ तो जिंदगी के हर मोड पर यू फूक-फूक कर कदम रखता है जैसे उसकी जान और पोजीशन अत्यन्त नाजुक और अनमोल वस्तुए हो। लेकिन दूसरी तरफ किसी समायिक खिदपने के आवेश में आकर वह दोनो से लापरवाह हो जाता है और इसी में उसको मजा भी आता है।

ड्राइवर निचले वर्ग का आदमी है। उसे इस बात की रत्ती भर

परवाह नही । यदि इसी समय पुलिस उसे बीस आदमियों के सामने अपमानित करे, उसे गिरफ्तार करके थाने मे डाल दे, तो भी क्या ? उसे आगा-पीछा सोचने की कभी गुँजाइश नही होती । वक्ती तौर पर जो मन में आए कर लेना यह उसके लिए कोई विलक्षण बात नही, बल्कि उसके जीवन का दस्तूर ही है । ऐसा करने में उसे किसी रोमास या रिदपने का एहसास भी नही होता । कारण यह कि न दुनिया की और न उसकी अपनी नजर म उसके जीवन की कोई कीमत है । उसकी तौफीक भी छोटी और इसके साथ-साथ उसके ज्ञान का दायरा भी बहुत छोटा है ।

अब वह चुप था । मुझे ठीक न लगा । मैंने सोचा, कही सुस्त पड कर ऊंघ न जाय । उसे बातो मे लगाए रहना चाहिए ।

"चुप क्यो हो गए भाई ?"मैंने कहा ।

पहले तो वह कुछ न बोला । फिर आजुर्दा सी आवाज मे कहने लगा—"देखो साहेब, हम पिया है । बहुत कसूर किया है । पर तुम हम कू काहे को हैरान करता है?"

"अरे भाई,तुम्हे हैरान करने की मुझे क्या जरूरत पडी है ? मैंने तो यू ही कहा । अगर तुम्हे बुरा महसूस हुआ तो मुझे माफ कर दो !"

थोडी देर चुप रह कर वह फिर बोला—

"तुम फिल्म में काम करता है न साहेब ।"

"हा"

"हम देखा है तुम कू । गरीब के दिल को पहचानता हैं तुम?"

"अरे नही भाई,गरीब के दिल को गरीब ही पहचान सकता है ।"

"वह तो ठीक है ।"

और फिर कुछ क्षण बाद उसने गाना शुरू किया—

अचानक गाते गाते वह रुक गया और बोला—

"साहेब, तुम पूछा था हम कू मौत से डर लगता है कि नही सुनो—उसका जवाब—" वह फिर गाने लगा—

"जब दिल ही टूट गया
हम जी के क्या करेंगे......जब दिल ही......
समझ गया न साहेब, दिल...दिल का मतलब कलेजा, समझा ?"

इसके बाद वह लगभग आधी दरजन फिल्मी गीत सुना गया। पूरा गाना उसे एक भी याद न था। गाते समय वह दाहिना हाथ खिडकी से बाहर निकाल कर खूब झुलाता। अतरा निभाने की मुश्किल को आसान करने के लिए वह कभी ब्रेक को और कभी क्लच को जोर से दबा देता। पीछे आने वाली मोटरे उसकी हरकतो से काफी बेजार थी।

"अच्छा गाते हो तुम" मैंने जी कडा कर के कहा।

हम नही गाता है साहेब, हमारा गाडी गाता हे। देखो इसका कितना अच्छा आवाज है।"

मोटर नई मालूम होती थी। इजन की आवाज वाकई उसकी अपनी आवाज के मुकाबले मे अच्छी थी।

"तुम्हारी अपनी गाडी है ?" मैंने कुछ हैरान होकर पूछा।

"नही साहब, अपनी तो नही है..." कुछ और कहते कहते वह रुक गया। इस बार उसकी खामोशी ने हवा मे कुछ दर्द सा पैदा कर दिया।

लेकिन अपनी तबियत को बहाल करने मे उसे अधिक देर नही लगी। वह फिर सुर अलापने लगा। साथ ही बारिश भी फिर जोर पकड गई, गाडी के सारे शीशे उठाने पडे। अब उसका गाना और उसके मुँह से निकलता हुआ सस्ते सिगरेट का धुँआ दोनो असह्य थे। मैं उकता गया जब भी सामने से कोई गाडी आ जाती मै बेसब्र होकर उसे सम्हल भाई, सम्हल के" कहने लगता।

इस बात से वह चिढ गया शायद। एकदम ही मेरी तरफ मुंह मो कर बोला—

"साहेब, तुम को बताऊँ कैसे होता है एक्सीडेंट ? देखो, तुमको एक्सीडेंट करके बताता हूँ।"

पेश्तर इसके कि मैं कुछ कह सकता, उसने एक भारी मूर्खता कर डाली।

बारिश बम्बई मे आती भी बडी तेजी से है और रुक भी एकदम जाती है। पहली बूद पडते ही लोग भाग कर कही आश्रय लेते है, और जहाँ रुकने के आसार दिखाई दिए फौरन फिर सडको पर निकल पडते है, जैसे कुछ हुआ ही न था। हम अब सांताक्रुज के करीब पहुँच चुके थे। सडक पर लोगो की चहल-पहल फिर शुरू हो गई थी। तीन नौजवान, जिन्होने खाकी वर्दियां पहन रखी थी और जिनके कधो पर पर लटकती हुई पेटियो से ज्ञात होता था कि बस-कडक्टर है, आसपास के कीचड को लाघते हुए सडक पर आ रहे थे। ड्राइवर ने आव देखा न ताव, मोटर उन पर चढा दी।

'अरे यह क्या कर रहे हो ?" मैने हडबडा कर कहा। मेरे मन में उस क्षण उसके लिए सख्त घृणा पैदा हो गई। लेकिन कम्बख्त ने जो भी किया ऐसी सफाई से कि मै दग रह गया। इधर एक कडक्टर को ठोकर लगी और उधर गाडी के चारो पहिये जाम हो गए। कडक्टर को भी बस मामूली सा ही धक्का लगा, जैसे मोटर से नही, किसी आदमी ने पीछे से आकर दिया हो। फिर भी तीनो कंडक्टर सख्त घबरा गए, और मुड कर हमारी तरफ हैरत भरी नजरो से देखने लगे। ड्राइवर बडी ढिठाई के साथ उनकी निगाहो के साथ उनकी निगाहो का मुकाबला करता रहा, जैसे कह रहा हो "हां, मैने जान-बूझकर तुम्हे टक्कर मारी है। अब देखता हूँ तुम मेरा क्या बिगाड लोगे ?" यह भी एक विचित्र परिस्थिति थी। टैक्सी के तमाम शीशे चढे हुए थे, इसलिए कडक्टरो की समझ में नही आ रहा था कि ड्राइवर से कुछ कहे तो किस प्रकार कहे ? और खामोश रहना भी वह न चाहते थे। धक्का कोई ऐसा जोर का न लगा था। साथ ही कुदरत का एक करिश्मा यह भी हुआ कि जिस वक्त यह टक्कर लगी ऐन उसी वक्त दाए हाथ से एक डबल-डेकर बस डिपो में से निकली और

बिल्कुल करीब से क्रास कर गई। इस कारण बेचारे कंडक्टर और भी नरम पड़ गए थे कि शायद ड्राइवर से बचाव करते-करते धक्का लग गया हो। लेकिन इसके विपरीत ड्राइवर जिस उद्दण्डता से उनकी तरफ देख रहा था, उससे जाहिर था कि जानबूझ कर उनका अपमान किया गया है। उनकी इस शशोपंज का शराबी खूब मजा ले रहा था। यकीनन ऐसी धूर्तता उसने पहली बार नहीं की।

काफी देर रुक कर और अन्त में सिर को यूं हिलाकर जैसे कह रहा हो, "अच्छा मेरे खिलाफ कार्रवाई करने की तुम्हारे अन्दर बिल्कुल हिम्मत नहीं है, तो मैं चलता हूँ" ड्राइवर ने गाड़ी आगे बढ़ाई। शीशे को नीचे करता हुआ वह मुझ से कहने लगा—

"इसकू बोलते हैं साहेब एक्सीडेंट। अभी तुम हमकू "संभल के" "संभल के" मत बोलना हाँ?"

मेरी हालत भी उन कंडक्टरों जैसी ही हो गई थी। एक तरफ इस मूजी पर गुस्सा आता और दूसरी तरफ उसकी जिन्दादिली और उसके आत्मविश्वास को देखकर तबीयत खुश होती।

इतना मैंने जरूर कहा—

"ऐसा कभी न करना चाहिए भाई।"

"काहे को?"

"मोटर वाले को हमेशा पैदल चलने वालों की इज्जत करनी चाहिए।"

"काहे को?"

"क्योंकि वह गरीब होते हैं।"

एक ड्राइवर से उसे ऐसे मन्तक की उम्मीद न थी। बड़े नम्र भाव से बोला—

"यह बात तुम ठीक बोला साहेब। हमसे बहुत गल्ती हुआ। आज हमारा माथा फिरेला है। तुम हमकू माफ करना। हम से बहुत कसूर हुआ साहेब।" उसने फिर स्टीयरिंग छोड़ दिया और दोनों हाथ

जोड दिये।

मैंने कुछ जवाब न दिया। कुछ देर चुप रहने के बाद वह अपने आप ही बडबड़ाने लगा—

"पर यह कडक्टर लोग किधर अपने आप को गरीब समझता है। यह तो अपने कू लाट-साहब का नाती समझता हे। पेसैंजर लोग को बहुत हैरान करता हे यह।"

इस सादगी पर मुझे भी हसी आई। शराब का नशा इन्सान को कैसे अन्दर बाहर से यक-सा कर देता हे। इस हालत मे इन्सान जो सोचता है, वही कहता और करता है। शायद रोजमर्रा के छल-कपट से तंग आकर ही लोग शराब पीते होगे, ताकि कुछ देर के लिए इस निरर्थक और अस्वाभाविक बोझ को सिर से उतार फेके।

जुहू वाली सडक पर पहुँच कर मं कुछ निश्चित हुआ। यहा दिन के वक्त यातायात बहुत कम होता हे। सोचा, घर पहुँचते ही, चाय की गरम-गरम-प्याली खुद भी पियूँगा और इसे भी पिलाऊँगा। कमला को तैयार होने मे पन्द्रह बीस मिनट लग ही जायेंगे। तब तक इसका नशा उतर जाएगा फिर हमें दादर तक सही-सलामत पहुचाना इसके लिए कोई मुश्किल नही।

जुहू की सडक पर उस वक्त एक अजीब समा बध रहा था। सडक के दोनो तरफ बारिश का और समुद्र से छलक कर आया हुआ पानी मीलो तक फैला हुआ था। नारियल के पेड़ तेज हवा मे मस्ती से झूम रहे थे। अब मेरे साथी को एक नया गीत सूझा—"दुनिया रग रगीली बाबा।"

इस जौक की दाद दिये बिना मै कैसे रह सकता? वाकई यह ममाँ इस गीत के सर्वथा अनुकूल था—

अनायास ही मै गुनगुनाने लगा।

मेरी आवाज उससे अच्छी थी। लेकिन उसकी आवाज ज्यादा स्वच्छद थी, और सुर में रहने का भी इसे खासा अभ्यास था। मिल कर

गाने से हम एक दूसरे की खामियो को पूरा करने लगे और गीत और भी मजेदार हो गया—

'अर, जरा खुल के गाओ साहेब। शरमाने की क्या बात है। परवाह मत करो किसी साले की .. दुनिया की ?..."

'अच्छा भाई यूँ ही सही" मैंने अपने मन मे कहा और तदुपरान्त जितने जोर से गा सकता था, गाने लगा। यह गीत ड्राइवर को पूरा याद था, या शायद वज्द में आकर याद निखर आई थी। भरपूर मजा आया।

कभी-कभी बडी इमारतो के पीछे छुपे हुए समुद्र की झलक मिल जाती। पवई की पहाडी पर बादल यूँ लेटे हुए थे, जैसे उसे बडें प्यार से उठा कर किसी दूर देश में ले जाना चाहते हो। और हम गा रहे थे—

राह चलते लोग हैरान होकर हमारी तरफ देखते, और हंस भी देते थे। मुझे रह-रह कर झेंप महसूस होती—किसी पहचान वाले ने देख लिया तो ? बार-बार अपना "मूड" बरकरार करना पडता, दर्शकों के सामने एक्टर को अपना "मूड" बनाना पड़ता है और सच तो यह कि इस समय मैं कल्पना मे वाकई बड़े-बडे सीन खेल रहा था। मै वाकई भविष्य में उस "देश सुनहरे" जा बसा था जहाँ हर मेहनत करके पेट पालने वाले इन्सान की "जीवन नैया" 'सुख की नदिया" पर बहेगी, 'आशा के पतवार" नैया को हमेशा पार लगाया करेंगे, ऊंच नीच के खोटे भेद सब मिट जायेंगे। इस तरह मेरा जोश बढ जाता था, और एक 'निचले दर्जे" के आदमी के साथ मिल कर गाने की झेंप मिट जाती थी।

अब जुहू की चौपाटी के दर्शन हुए। ज्वार-भाटा जोरो पर था। पानी सडक तक आया हुआ था। हमारी आवाज लहरो के गर्जं में विलीन हो गई। ड्राइवर बोला—

'साहेब, तुम सच-सच बताओ, तुम कितना पिया है ?"

"क्यो शराब पिये बगैर इन्सान गा नही सकता ?"

"मै कसम खा कर बोलता है, तुम हमसे जास्ती पियेला है।"

"और मै कसम खाकर कहता हू कि मैने एक बूँद भी नही पी है"—मैने शराबियो जैसी एक्टिग करते हुए कहा।

हम दोनो हस पडे। थोडी देर बाद मेरा घर आ गया। उतर कर मैने उसे गाडी मोड कर खडी करने के लिए कहा। लेकिन अपने साथी को इस तरह छोड कर चले जाना मुझे अजीब-सा लग रहा था। मै उसको अन्दर आने की दावत देने के लिए वापस मुडा। लेकिन उसके पास पहुँच कर मेरे मुँह से सिर्फ यही निकला—"चाय .पियोगे न भाई।"

उसने भी आख चुराते हुए बडे संकोच से कहा"नही साहेब।"

वह तिलिस्म जो एक गीत ने हमारे दरमियान पैदा कर दिया था, अब टूट चला था।

'मै ... .अभी आता हूँ" यह कर मै तेज कदमो फाटक के अन्दर जा घुसा—जैसे हम दोनो ने मिलकर कोई पाप किया हो।

अन्दर आकर मालूम हुआ कमला जा चुकी है। मैने नोकर को जल्दी चाय बनाने का आदेश किया और स्वय मुह हाथ धोने तथा कपडे बदलने मे मसरूफ हो गया।

अभी कुछ मिनट ही गुजरे होगे कि मोटर के हार्न की लम्बी और कर्कश ध्वनि सुनाई पडी। मुझे महसूस हुआ शायद ड्राइवर को मेरी ईमानदारी पर शक होने लगा है। कही मै किसी दूसरे रास्ते खिसक तो नही गया हू ? मै कमीज बदलकर उसके पास पहुचा। मुझे देखते ही वह बोला—

"हमारा धंधा खराब होता है साहेब।" उसकी आवाज से मुरव्वत और नम्रता गायब थी।

"मगर मैने तो तुम्हे शुरू में ही कह दिया था मुझे जुहू होकर दादर जाना है।"

"कहा होगा साहेब, हमकू याद नही। हमारा धधा खराब होता है।"

धधा कैसे खराब होता है, मै न समझ सका। "अच्छी बात है" मैंने भी रुखाई से जबाव दिया, "तुम्हारी मरजी, मगर मीटर पर जो लिखा है वही दूँगा। उसके अलावा जो डेढ रुपया तुमने मागा था वह नही दूगा।

"अच्छी बात है, मत दो साहेब।"

'बहुत अच्छा" मीटर के हिसाब से मैंने उसे भाडा दे दिया।

पैसे लेते वक्त उसके चेहरे पर खिन्नता के आसार नजर आए, जैसे उसे इस घाटे के सौदे का अभी-अभी आभास हुआ हो। इस अवसर पर यदि मै उससे फिर दो मीठी-मीठी बाते करूं तो मोम हो जाए। लेकिन अब मेरा अहंभाव जाग चुका था। उसने मुझे अकड दिखाने की जुर्रत की थी। मै भी क्यो न अकड दिखलाऊ। मैंने उसके साथ सज्जनता का व्यवहार किया। यदि चाहता तो कुछ भी दिये बगैर उसे अंधेरी स्टेशन पर ही छोड देता। उसके दिल मे ठेस न लगे, इस खातिर मैंने अपनी जान तक को खतरे मे डाला है। न केवल यह, बल्कि सारा रास्ता उसके साथ एक मित्र की तरह हसता बोलता रहा। क्या उसे इसका कुछ भी लिहाज न होना चाहिए।

मै मुंह फेर कर वापस चला गया। वह भी मोटर स्टार्ट करके चलता बना।

मेरा जी खट्टा हो गया। मैंने चाय पी, शाम का अखबार पढा, कुछ देर सोफे पर लेट गया। फिर भी तबीयत को सहला न पाया। आखिर उस कम्बखत को अचानक यह हुआ क्या? यह सोच कर और भी तकलीफ होती रही कि उसे पूरे-पैसे न दिये। और उसने भी इसरार क्यो न किया। सारा रास्ता खाली जाएगा। एक तो, अकेला है वह। कही फिर कोई मूर्खता न कर बैठे। कही मेरे अन्दर आते ही उस ने फिर तो बोतल मुँह को नही लगा।

तैयार होकर मै घर से निकला। स्टाप पर बस मिलने मे देर नहीं

लगी, मै सवार हो गया ।

लेकिन थोडी दूर जाकर बस रुक गयी । मै दरवाजे के करीब बैठा था । कौतूहलवश झाक कर बाहर देखा । मालूम हुआ कि वही टैक्सी एक कोठी के फाटक से टकराई पडी है । सडक के बीचोबीच दस-बीस आदमी घेरा बाधे खडे हैं, और इन्ही के दरमियान मेरा भरे बालोवाला यार चुधियाई हुई आखो से इधर-उधर देख रहा है । मेरा अदाजा ठीक ही निकला । अब उसके लिए सीधा खडा रहना भी मुश्किल हो गया था ।

भीष्म साहनी

समाधि भाई रामसिंह

यह घटना मेरे शहर में घटी। यह घटना और कही घट भी न सकती थी। शहरो मे शहर है तो मेरा शहर, और लोगों में लोग है तो मेरे शहर के लोग, जो अपने बराबर किसी को समझते ही नही। हमारे शहर के बाहर एक गदा नाला बहता है, पतला, बूढा, मन्दगति, जिसमे इतना पानी भी नही कि उसमे भैंसे बैठकर अपना बदन ठण्डा कर सके, मगर हम उसे दरिया कहते है। एक बाग है, जिसमे शीशम और सफेदे के पेडो के अलावा तीसरी तरह का पेड नही, और कौओ और चीलो के अलावा कोई परिन्दा नजर नही आता, नीचे झाड-झंखाड है, और हर वक्त वहाँ गर्द उडती रहती है, बसत में भी वहाँ कभी हरियाली देखने को नही मिलती, पर शहर वाले उसे चमन कहते हैं, और उसे किसी भी पुष्प-वाटिका से अधिक सुन्दर मानते है। लोग खुद न हसो में न कौओ मे, न वह पठान, न पूरे पजाबी, लेकिन वह अपने-आपको पठानो से भी बड़े पठान और पंजाबियो से बडे पजाबी मानते है। इस शहर की कोई चीज अपनी नही, जो फल आते है, तो काबुल से और कपडा आता है विलायत से, इसके अपने फल तो खट्टे अलूचे, लसूडे और गरण्डे होते हैं, जिन्हें अब बकरियो ने भी खाना छोड दिया है, मगर शहर वाले इसे फलो का घर और कपडे की मण्डी मानते हैं। बस, इस शहरवालो की एक ही चीज अपनी है, उनकी मूछे, जिनके कोने सदा

ऊपर को उठे रहते हैं, उनमें कभी खम नहीं आया।

इसलिए यह घटना इसी शहर में ही घट सकती थी। चूंकि शहर बहुत पुराना नहीं, यहां कोई स्मारक या मन्दिर नहीं, मगर किसी शहर वाले से कहकर तो देखो, वह आपको इस नजर से देखेगा, जैसे वह गुफावासी को देख रहा हो, और फिर पूछेगा—तुमने भाई रामसिंह की समाधि देखी है?

और इसके बाद समाधि की तारीफ मे और भाई रामसिंह की तारीफ में एक कसीदा कह डालेगा। अब भाई रामसिंह कोई गुरु नहीं हुए, उनका इतिहास मे कही नाम नहीं मिलता, शहर के बाहर इस बेचारे को कोई जानता तक नहीं, मगर यहां उसे और उसकी समाधि को शहर का बच्चा-बच्चा जानता है, और यदि देश भर का बच्चा बच्चा नहीं जानता तो इसमे देशवालो का दोष है, शहरवालो का नहीं।

जो घटना मैं आपको बतलाने जा रहा हूँ, वह इसी समाधि से सम्बन्ध रखती है।

यूं हमारा शहर छोटा सा है, जिसमे एक बाजार लम्बा सा कपड़े वालों का, एक नानबाइयो का, एक सब्जी मंडी एक अनाज मण्डी, अनगिनत गलियाँ और दर्जन के लगभग मुहल्ले हैं। शहर के बीच में एक ऊँचा सा टीला है, जिस पर एक मन्दिर है और जिसके चारों तरफ लम्बी-लम्बी सड़कें उतरती हैं, जैसे शिव जी की जटा से एक की बजाय चार नदियाँ बह निकलें। लोग मस्त हैं, जो काम करते हैं वह भी, और जो काम नहीं करते वह भी, चौबीस घन्टों में एक चक्कर शहर का जरूर काटते हैं, इसलिए गलियो और सड़को पर रौनक रहती है।

उसी रौनक में आज से कोई बीस बरस पहले एक रोज इसी टीले पर, मन्दिर की बगल में से निकल कर भाई रामसिंह चौराहे पर आन खड़ा हुआ था। गोरा रंग, लम्बी चमचमाती दाढ़ी, कुछ कुछ काली, कुछ कुछ सफेद, और स्वस्थ, नाटी देह। उस वक्त उसकी अवस्था चालिस पैंतालिस के लगभग होगी। बगल में एक सफेद गागर उठाये

तन पर सफेद चादर और सखेद अगोछा पहने वह टीले पर आकर खडा हो गया। मगर किसी ने उसकी ओर विशेष ध्यान न दिया। चौराहे के एक तरफ कुछ लडके खेल रहे थे। भाई रामसिंह धीरे-धीरे उनकी ओर चला गया, और एक लडके को अपनी ओर बुलाकर बोला—लो बेटा, यह पियो।

और गागर मे से कटोरी भरकर लडके की ओर बढायी।

लडके सब इकट्ठे हो गये और बडे कौतूहल से उसकी ओर देखने लगे। फिर एक लडके ने कटोरी भाई रामसिंह के हाथ में से ले ली और बार-बार इधर-उधर देखने के बाद मुँह को लगायी, और लगाते ही दूसरे क्षण उसे थूक दिया और कटोरी फेंक दी।

यह चिरायता है बेटा, इससे फोडे-फुंसी नही होते। लो, थोडा-थोडा सब पियो।

मगर किसी ने हाथ न बढाया, जिसने चखा था, वह अब भी थू-थू कर रहा था, और बाकी लडके खडे उस पर हँस रहे थे।

आखिर भाई रामसिंह उनसे हटकर एक सडक से नीचे उतरने लगा। लडके फिर कुतूहलवश थोडी दूर तक उसके पीछे-पीछे गये, फिर लौट आये और अपने खेल में जुट गये।

इसके बाद भाई रामसिंह सडक उतरने लगा और राह जाते बच्चे, बडे, सबको चिरायता पीने का निमन्त्रण देने लगा, फिर धीरे-धीरे शहर की गलियो में खो गया।

इस तरह भाई रामसिंह का शहर में उदय हुआ था।

कुछ ही दिनो में भाई रामसिंह को शहर के सब लोग जान गये। जहाँ जाता, स्त्रियाँ अपने खेलते बच्चो को पकड पकडकर उसके सामने ले जाती, और जबरन चिरायता पिलवाती' क्योंकि चिरायता सचमुच फोडे फुंसियो का बेहतरीन इलाज है। जिस गली में वह पहुँचता, बच्चे फौरन छिप जाते और माँए उनके पीछे-पीछे भगने लगती, लोग हँसते और भाई रामसिंह की खिल्ली उड़ाते। लोगो के लिए भाई रामसिंह

एक तमाशा बन गया। मगर उसके उत्साह मे कोई शिथिलता नही आयी। बल्कि कुछ ही दिनों बाद उसकी गागर में छोटा-सा नल लग गया, ताकि चिरायता उँडेलने में आसानी हो, फिर एक कटोरी की बजाय तीन कटोरियाँ आ गयी, ताकि तीन आदमी एक साथ पी सके, फिर भाई रामसिह के कन्धे से एक बिगुल भी लटकने लगा। जिस मुहल्ले में जाता पहले बिगुल बजाकर अपने आगमन की सूचना दे देता।

लोग तरह-तरह के अनुमान लगाने लगे। कोई कहता कि साथ वाले कस्बे से आया है, वहाँ उसकी कपडे की दूकान थी, कोई कहता, जासूस है किसी हत्यारे की खोज मे आया हे। मेरे शहर वाले अनुमान भी लगाते हैं तो छाती ठोक कर। किसी ने कहा—इसके पास चालीस हजार रुपया नकद है, मैंने खुद देखा है —लड़के कहते की श्मशान-भूमि मे रहता है और रात के वक्त भी शहर के चक्कर काटता भूतो को चिरायता पिलाता है। तरह-तरह की बातें उठी, पर धीरे-धीरे शात हो गई। भाई रामसिह बहुत बोलता न था। उससे जो पूछता, तो कहता— गुरु महाराज के चरणो में रहता हूँ, उन्ही का दास हूँ।

जब चैत बैसाख गुजर गये, तो भाई रामसिह गागर में ठडा पानी पिलाने लग गया। जब मन की मौज आती, तो किसी किसी दिन पानी की जगह सन्दल का शर्बत पिलाने लगता। हमारे शहर का सन्दल का शरबत दुनिया भर में मशहूर है। और जाडे के दिनो मे कभी कभी इलाइचीयो वाली चाय भी लोगो को मिलती। गरज कि भाई रामसिह का चक्कर ज्यो का त्यो कायम रहा, और शहर में चिरायतेवाला साधु के नामसे वह मशहूर हो गया।

इसी निस्वार्थ सेवा में दस बरस बीत गये। अब जिस साधू का अपना कोइ स्थान हो, अपना अड्डा हो वह साधु से सन्त जल्दी बन जाता है, मगर जो सदा घुमता रहे, उसकी चर्चा चाहे जितनी भी हो, मगर वह भाई का भाई ही रहता है। भाई रामसिह के साथ भी यही कुछ हुआ। इन दस बरसो में भाई जी की दाढ़ी के बाल रेशम की तरह

सफेद हो गये, चेहरे पर झुर्रियां आ गयी, हालांकि चेहरे की रौनक ज्यों की त्यों कायम रही, क्योंकि जो भी आदमी गागर उठाये तीन चार मील का चक्कर रोज काटे उसके चेहरे पर तो लाली रहेगी ही। मगर अब भी भाई रामसिंह चिरायतेवाला साधु ही रहा। अब भी गलियों में से घूमता हुआ जाता, तो वही लोगों को नमस्ते करता, उसे नमस्कार करने के लिए कोई अपनी जगह से न उठता। बात भी ठीक थी, भला चिरायता पिलाने से भी कभी कोई सन्त हुआ है ?

पर एक दिन न मालूम भाई रामसिंह को वैराग्य हुआ, या भ्रम हुआ या उसने कोई स्वप्न देखा, या सचमुच ही उसे आकाशवाणी हुई, सुबह सवेरे टीले पर आकर कहने लगा—भक्तो ! रात को गुरु महाराज का का परवाना आ गया है, मैं जा रहा हूँ। कल सुबह दिन चढते चढते मैं चोला बदल जाऊँगा।

यह बात उसने टीले पर बुद्धसिंह बजाज की दूकान के सामने कही, जहाँ वह दिन मे पहली बार बिगुल बजाता था। आज भी उसकी बगल में गागर थी। बुद्धसिंह बजाज ने सुना, पर कोई विशेष ध्यान न दिया मगर उसके छोटे भाई ने जो नामधारी सिक्ख हो गया था, सुन लिया। कहने लगा—सुना, भाई रामसिंह ने क्या कहा ?—वह चोला बदलने जा रहे है।

सरदार बुद्धसिंह ने जवाब दिया—मैंने सुन लिया है, तू समझता है, मैंने सुना नहीं ? चोला बदलता है तो बदले, मुझे उसके मुँह मे आग थोड़े देनी है ! तेरे बेटे चिरायता पीते रहे हैं, तू उसके पाव पकड़ !

इस पर दोनो भाई हँसकर चुप हो गये।

मगर दुकान पर बैठी हुई दो स्त्रियो के कान मे यह बात पड़ गयी। पहले वह भी हँसी, मगर जब कपड़ा लेकर लौटती हुई वह सेवाराम की गली मे से गुजरी और गली के मोड़ पर भाई रामसिंह को खड़े चिरायता पिलाते हुए देखा, तो उनके दिल को कुछ हो गया। एक ने

दुपटे का आँचल मुँह पर रखते हुए कहा—हाय, बेचारा ! चोला छोडता है, और आज भी चिरायता पिला रहा है !

बस फिर क्या था। खबर के फैलने मे देर न लगी। सेवाराम की गली से बात नये मुहल्ले में पहुँची, वहाँ से छानी मुहल्ले मे, फिर लुन्डा बाजार भाभडखाना, सैदपुरी दरवाजा। एक गली से दूसरी गली तक पहुँचते हुए उसकी रफ्तार तेज होती गयी, यहाँ तक कि थोडी देर मे यह खबर एक बवन्डर की तरह शहर की गलियो और सडको पर घूमने लगी, कि चिरायते वाला भाई रामसिंह कल सुबह ४ बजे पौ फटते ही चोला छोड देगा।

जब भाई रामसिंह की गागर नियमानुकूल लुण्डा बाजार के सिरे पर पहुँचकर खतम हो गयी, और वही से उसने कदम फेर लिये और शहर के बाहर जहा एक पेडो का झुरमुट है, जिसे हम तपोबन कहते हैं, एक पेड़ के नीचे जा बैठा।

तपोवन शहर के बाहर कीकर और पलाश के पेडो का एक झुरमुट है, जहाँ एक पुराना कुँआ है,जिसपर लोग सुबह दातून करने और नहाने जाते हैं। वहा रहता कोई नही, केवल कभी-कभी आए-गए सन्तो की कथा होती है।

दोपहर तक तो तपोवन में शान्ति रही, मगर ज्योंही दो बजे का वक्त हुआ और स्त्रियो ने चौके उठाये, तो कई भक्तिनिया हरिनाम जपती हुई दिल में हाय हाय करती, भाई रामसिंह को खोजती वहाँ आ पहुँची। चार बजत-बजते स्त्रियो की भीड़ लग गयी। पुरुषो ने सुना, तो हँसे, मगर धीरे धीरे उनका धैर्य भी टूटने लगा। क्या मालूम यह भी कोई पहुँचा हुआ सन्त हो ! दर्शन करने मे क्य हर्ज है ? कुछ तमाशे के ख्याल से, बच्चे, बूढे, जवान, सब वहाँ पहुँचने लगे। आखिर शहर तो वही था, जो जाये तो सब जायें, और जो सब जायें, तो घर में बैठना हराम है !

जो भाई रामसिंह अभी तक भाई रामसिंह ही था, अब दोपहर तक

वह सन्त बन गया, और शाम होते होते सन्त महाराज की उपाधि उसे मिल गयी। कई मुरादें बिन माँगे पूरी हो जाती हैं। जिसे दस बरस तक किसी ने न पूछा था, आज उसी के दर्शन को हजारों लोग एँड़ियाँ उठा उठा कर झाँक रहे थे। पेड़ के नीचे आसन बिछा दिया गया। फिर कहीं से चौकी आ गयी। दर्शनों के लिए सन्त महाराज का ऊँचा बैठना जरुरी था। एक भक्त चँवर झेलने लगा। फूलों के ढेर लगने लगे। कहीं से गैस का लैम्प आ गया, फिर दो लैम्प और आ गये। स्त्रियों की भक्ति का तो कोई अन्त न था। पैसे, आटा, घी निछावर होने लगे। भाई रामसिंह को भी इसी के अनुसार आँखें बन्द किये हुए ध्यानमग्न होकर बैठना पड़ा। फिर कहीं से बाजे, तबले वगैरा आ गये। कीर्तन होने लगा। लोग झुक-झुककर भाई रामसिंह की दिव्य मूर्ति को प्रणाम करने लगे।

बात मुसलमानों के मुहल्ले में भी जा पहुँची। सन्त पीर सबके साझे होते हैं। मुसलमान भी आ पहुँचे। वाह! वाह! क्या जमाल है! स्त्रियां घरों को लौटतीं, मगर घरों में उनके पाँव कब टिकते थे? जो दाल रोटी बन पाती, बनाकर फिर दौड़ी वहाँ जा पहुँचतीं।

रात के बारह बज गये। उत्तेजना बढ़ने लगी। एक कोमल हृदय की बूढ़ी औरत ने हाथ बाँधकर भाई जी से विनती की कि महाराज! दया करो, चोला न बदलो! महाराज ने सुना, मुस्कराये, और चुपचाप आँखें आकाश की ओर करके फिर ध्यानमग्न हो गये। सारे शहर का दिल धक् धक् कर रहा था। उत्कण्ठित और उत्तेजित लोग इसी इन्तजार में थे कि कब चार बजे और वह चोला बदलने का चमत्कार देखें।

रात गहरी होने लगी। लोग घड़ियाँ देखने लगे। उस रात शहर भर में कोई नहीं सोया। गलियाँ सुनसान पड़ गईं, उनमें कोई आवाज आती, तो दौड़ते कदमों की। एक दरवाजा खटकता, एक आवाज आती—दो बजे हैं, बस अब दो घण्टे बाकी रह गये। तू बैठ मैं अभी

आता हूँ। तू जाएगी, तो बच्चो को कौन देखेगा? मै लौट आऊँ, तो तू चली जाना।—रात भर यही किस्सा होता रहा। जब मर्द के कदम दूर निकल जाते तो औरत के कदमो की आवाज आने लगती।

तीन बज गये, फिर साढे तीन। कीर्तन मे अब हजारो स्त्री पुरुष भाग ले रहे थे। ऊँचे कण्ठ से गुरु वाणी गाई जा रही थी। पेडो पर बैठे हुए पछी भी पत्तो मे से झाँक झाककर यह दिव्य चमत्कार देख रहे थे।

पौने चार बजते बजते जयजयकार हो उठी। महाराज ने आँखे खोली। स्त्रियो ने रो रोकर एक दूसरी को कहा—वक्त आन पहुँचा। देखो, इन्हे अपने आप पता चल गया।

अँधेरा बहुत गहरा था। मगर लोग अपनी अपनी घडियो पर एक एक मिनट ऊँची आवाज मे गिन रहे थे। हमारे शहर मे चार बजे का वक्त पौ फटने का वक्त माना जाता है।

चार बजने मे पाँच मिनट पर गुरू महाराज वेदी पर से उठ खडे हुए और हाथ जोडे, सिर नवाये, नीचे आकर ऐन वेदी के सामने लम्बे लेट गये, और छाती पर दोनो हाथ जोड कर आखें बन्द कर ली। श्रद्धा और भक्ति के बाध टूट पडे, औरते सिसकियाँ ले लेकर रो उठी, और महाराज पर फिर से पुष्प वर्षा होने लगी।

चार बजने मे एक मिनट, एकदम सन्नाटा छा गया। चारो तरफ चुप्पी छा गयी। हरिनाम की ध्वनि बिल्कुल शाँत हो गयी। स्त्रियो के आँसू सूख गये और आँखे भाई रामसिंह के चेहरे पर पड गयी। सब लोग साँस रोके एक टक गुरु महाराज की ओर देख रहे थे।

ठीक चार बजे महाराज ने आँखे बन्द करली और हिलना-डुलना छोड दिया।

लोग चुपचाप आँखे फाडे देखते रह गये। दो एक ने हाथ आकाश की ओर उठा कर, रोने की आवाज मे कहा—गये! हमे छोड़कर चले गये!

फिर शहर के एक मुखिया ने धीरे से पास आकर कुछ फूल हटाते हुए, महाराज की नब्ज देखी। सिर हिलाकर बोले—धीमी है, मगर चल रही है।

लोग चुप थे। उनकी आँखें अब भी साधु महाराज के चेहरे को देख रही थी।

चार बज कर तीन मिनट पर फिर मुखिया ने नब्ज देखी, फिर सिर हिलाया और आहिस्ता से कहा—धीमी है, मगर चल रही है।

दूसरा मुखिया बोला—ससारी घडियो का क्या विश्वास ? जब ऊपर चार बजेगे, तो चोला अपने आप छूट जायगा।

चार बजकर पाँच मिनट हो गये। नब्ज अब भी चल रही थी। मुखिया ने झुक कर कान में महाराज से पूछा—महाराज, कैसे है ?

जवाब धीमा सा आया—मै इन्तजार मे हूँ। मैने अपनी तरफ से चोला छोड दिया है।

लोग एक एक सेकेण्ड गिन रहे थे, चार बजकर सात मिनट पर फिर मुखिया ने नब्ज पकडी, और मिनट भर पकड़ कर बैठे रहे। उन्होने अब भी तनिक ऊँची आवाज मे कहा—नब्ज ज्यो की त्यो चल रही है।

लोग एक दूसरे की तरफ देखने लगे। सिर हिलने लगे। चेहरो पर सशय की रेखाये नजर आने लगी। फिर दूसरे मुखिया ने खड़े खड़े कहा—साधु महाराज, क्या देरी है ?

महाराज ने आँखे बन्द किये हुए उत्तर दिया—मैं तो तैयार हूँ, ऊपर से परवाना आये तब तो!

जो श्रद्धा और भक्ति पहले मौन प्रतीक्षा मे परिणित हुई थी, अब अविश्वास और क्रोध मे बदलने लगी। लोग समझने लगे, जैसे उनके साथ खिलवाड़ हुआ है, उनका अपमान किया गया है।

ऐन सवा चार बजे जब मुखिया ने चिल्लाकर पूछा कि अब क्या देरी है, हम खडे खडे थक गये है, तो भाई रामसिह हाथ जोड कर उठ बैठे—भगवान मुझे रुला रहे है, मै क्या करूँ ? मै हर क्षण

इन्तजार कर रहा हूँ।

पर इस वाक्य का उल्टा असर हुआ। औरत भी बोलने लगी—है! देखो, यह तमाशा देखो, पाखण्डी!

दो एक सज्जन तो रात भर चमत्कार के इन्तजार में जागते रहे थे, और स्त्रियों से लड़कर आये थे, आगे बढ़ आए मानो जानता नहीं यह कौन शहर है!

महाराज डरकर उठ बैठे और हाथ जोड़े हुए चौकी के पास जा खड़े हुए। बोले—दिन चढ़ने से पहले चोला छोड़ जाऊँगा। भक्तो मुझे यही परवाना मिला है, आप घरों को जाओ!

अब दिन कब चढ़ेगा? चार तो कब के बज गये!—लोगों ने चिल्ला कर कहा।

भाइयो! आप घर लौट जाओ। मैंने यहाँ किसी को नहीं बुलाया। आप लोग जाओ ..सूरज चढ़ने से पहले...

मगर लोगों की आंखों में खून उतर आया। देखते ही देखते लोगों की बाढ़ आगे बढ़ आयी। लोग मुक्के कसने लगे। शहर के पाँच सात शोहदे और मुस्टंडे सामने आ गये।

भाई रामसिंह डर कर चौकी के पास से हट गया, और एक पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ।

बस, उसका वहाँ से हिलना था, कि धक्का मुक्की शुरू हो गई। भाई रामसिंह को घूँसे पर घूँसे पड़ने लगे। जिसे जो हाथ लगा, उसी से मरम्मत करने लगा।

भाई रामसिंह की भागती काया कभी एक पेड़ के पीछे और कभी दूसरे के पीछे आश्रय ढूंढने लगा मगर जहां वह जाता, भक्त वहीं जा पहुंचते। भला भक्तों से भी कभी कोई भाग सका है? पहले घूसे और मुक्के पड़ते रहे, जब भाग खड़ा हुआ, तो पत्थर और जूते पड़ने लगे। भाई रामसिंह बार बार चिल्लाया—भाइयों! मैंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। मुझे मत मारो। मैंने तुम्हारी सेवा की है।...

मगर भक्तों की भावना में कोई शिथिलना नही आई। हां कुछ एक ने छुडाने की कोशिश की, मगर पत्थरो के डर से वह भी पीछे हट गए।

फिर सचमुत एक चमत्कार हुआ, जिसकी चर्चा आज भी हमारे शहर के लोग बडे गर्व से करते हैं। ।

ऐन सूरज चढते-चढते भाई रामसिह ने चोला बदल दिया और प्राण पखेरू उडकर भगवान के पास जा पहुंचे, केवल उसकी देह,किचड मिट्टी और खून से लथपथ हो गयी थी, और उसके ईद गिर्द जूतो और पत्थरो का ढेर लग गया था।

मगर वह तो आखिर विसर्जित चोला था, उसे मिट्टी मे मिलना ही था।

इन चमत्कार का आभास होने मे देर नही लगी। जब दिन चढा आया और रात का भ्रम दूर हुआ तो भाई रामसिह की देह एक स्पष्ट सत्य की तरह सामने नजर आने लगी, तो एक ने कहा -- ठीक ही तो कहता था। सूरज चढने से पहले मर गया न ?

फिर दूसरे ने कहा—भला पत्थर मारन की क्या जरूरत थी ? मर तो उसे यो भी जाना था। हम लोगो मे धैर्य नही।

बस, पिर क्या था, स्त्रियो ने अपने दुपट्टे गले मे डाल लिये। आंसू बहने लगे। भक्त फिर इकट्ठे होने शुरू हो गये। आंसू बहने लगे जूते पत्थर हटा दिये गये, और पुष्प वर्षा होने लगी, भाई रामसिह का विर्जित चोला फुलो के नीचे फिर दबने लगा। और भाई रामसिह की अर्थी ऐसी सजधज कर निकली कि शहरवाले खुद अपनी श्रद्धा पर हश हश लगा।

और भाई रामसिह की समाधि तपोवन के पास ऐन उसी जगह पर बनाई गई, जहा वह आसन पर बैठे थे। ऐसी सफेद सुन्दर चमकती इमारत है कि रात को भी दूर से नजर आती है और उस पर एक

गोल गुम्बज भी है, सन्त जी की गागर वहा स्थापित है, और सफेद तथा बाना भी, और एक जोड़ा खडाउओ का भी, जो किसी भक्त ने अपने पैसो से खरीदकर वहा रख दिया गया था। हमारे शहर के बच्चे बूढे सच्चे दिल से मानते है कि कोई औलिया इस युग मे हुआ है, जो सन्त रामसिंह, जि। भगवान ने एक दिन दर्शन देकर सीधे अपने पास बुला लिया था।

श्री कृष्णबलदेव वैद

बीच का दरवाजा

बाबू रामदास खन्ना और मै पिछले नौ-दस महीने से एक ही मकान मे रह रहे हैं। उनके पास एक कमरा और एक रसोई घर है और मेरे पास सिर्फ एक कमरा। मेरा कमरा उनके कमरे से जरा छोटा है। एक कमरा स्टोर का और है, जिसे मालिक मकान ने बन्द कर रखा है। वह स्वयं दरियागंज मे रहता है जहाँ सडक के किनारे उसका एक दो मंजिला मकान है। सुनता हू वह इस मकान से दुगना बडा है। और उसमें उसके बडे लडके के अलावा एक किरायेदार भी है। हर महीने की दूसरी तारीख की शाम को मलिक मकान स्वय या उसका कोई आदमी आता है और मुझसे ३५) और बाबू रामदास से ४५) किराये के लेकर चला जाता है, और मिसेज रामदास के कथनानुसार हमारे सिर से एक बोझ उतर जाता है।

मेरे कमरे का एक दरवाजा बाबू रामदास के कमरे में खुलता है। इस दरवाजे की मैंने अपनी तरफ से चिटकनी चढ़ा रखी है और बाबू रामदास ने अपनी तरफ से, इसके साथ-साथ ट्रंको की एक दीवार खड़ी कर रखी है, जिस पर बैठकर बाबू रामदास का छोटा बच्चा ढोल बजाया करता है और जब कभी इस शगल में बहुत मग्न हो जाता है तो धडाम से कभी फर्श पर और कभी साथ लगी चारपाई पर गिरता है। जब चारपाई पर गिरता है तो खूब किलकारियाँ भरता है और मिसेज

रामदास—जिनके लिए मेरा प्राइवेट नाम 'पीली कबूतरी' है—जहाँ भी होती हैं दौड़ कर उसे गोद में उठा लेती हैं, जोर-शोर से चमने-चाटने लगती हैं, बच्चा अधिक खिलखिलाता है और वह दांत पीस-पीस कर कहती हैं, 'मेरा छोटा सा बाबू, मेरा अफसर, मेरा थानेदार।"

लेकिन जब कभी वह छोटा-सा बाबू—मैं तो उसे लगभग थानेदार के नाम से ही पुकारता हूं- धड़ाम से फर्श पर गिरता है तो चीख-चीख कर रोता है साँस से साँस नही मिला पाता और मिसेज रामदास जहाँ भी होती हैं दौड़ कर उसे गोद में उठा लेती हैं। उसके बाद उनके कमरे मे काफी कुहराम-सा मचा रहता है। सारा कुनबा इस समस्या पर बहस करने लगता है कि ट्रंकों के लिए कौन-सी ऐसी जगह बनायी जाएँ कि मन्नु, इस घबराहट में उसकी सारी अफसरी शान-शौकत मिट्टी मे मिल जाती है, जब गिरे तो किसी न किसी चारपाई पर ही। फिर बहुत देर तक ट्रंकों को उठा उठा कर और घसीट-घसीट कर इधर-उधर रखने की किचिर'किचिर' कानो मे आती रहती है। सब चीजें उलट-पुलट कर दी जाती है और ले देकर ट्रंक फिर अपनी पुरानी जगह पर ही लगा दिये जाते हैं।

क्योंकि बाबू रामदास का कमरा यद्यपि मेरे कमरे से बड़ा है लेकिन उनमे उनका छोटा-मोटा घरेलू सामान ठसाठस भरा रहता है और ट्रंकों के लिए उससे उपयुक्त स्थान निकालने की कोई सम्भावना नही। कई बार ऐसे मौको पर बाबू रामदास एक सुझाव देते हैं जिसे पीली कबूतरी' एक दम रद कर देती है। वह कहते है, 'नीचे के दो ट्रंको को छोड़ बाकी सब खाली पड़े है, क्यो न इन्हे बेच दिया जाए किसी कबाड़ी के पास ? व्यर्थ में जगह घेरे हुए है" लेकिन एक दिन बातो-बातों में, शरारतन समझिए या यो ही, मैंने उनसे वे दोना-तीनों खाली ट्रंक-मुहँ-माँगी कीमत पर खरीद लेने की इच्छा की थी, जिसके उत्तर में बाबू रामदास धीरे से मुस्करा दिये थे। साधारण अवस्था में वह इतना कम मुस्कराते है कि ठंडे दिमाग से सोचने पर ट्रंको को बेचना स्वयं बाबू

रामदास को बेहूदा दिखाई देता होगा।

एक और प्रस्ताव के बारे मे जो हमेशा मिसेज रामदास की तरफ से आता है, मेरी अपनी राय तो यही है कि किन्ही विशेष कठिनाईयो के कारण वह भी कार्यान्वित नही किया जा सकता, यानी जब वह रोते-हलकाते थानेदार को गले लगा कर यह माग करने लगती है– "क्यो नही कोई दो कमरे वाला मकान ढूँढ लेते ?" तो कम-से कम मुझे तो यही लगता है जैसे वह कह रही हो, "क्यो नही तुम आकाश से दो तारे तोड़ लाते ?" कुछ भी हो, दो कमरे वाला मकान बाबू रामदास और मेरी सामाजिकता के लोगो की पहुँच से बहुत परे है।

उनकी यह मुश्किल को हल करने के लिए एक तजवीज़ मैने भी पेश की थी जिस पर कुछ देर गौर करने के बाद बाबू रामदास ने उसे रद्द कर दिया था। वह प्रस्ताव यह था कि खाली ट्रंक तो रख दिये जाएँ, मेरे कमरे में और नीचे के दोनों ट्रंक दोनो चारपाईयो के नीचे धकेल दिये जाएँ, बीच का दरवाजा खुला रहे ताकि जब मुन्ना थानेदार का जी चाहे वह घिसट-घिसट कर मेरे कमरे मे आ जाए, क्योंकि मेरे कमरे में काफी जगह है। उन ट्रंको को अलग-अलग रखा जाय, जिससे थानेदार साहब के गिरने के 'चान्सेज' भी कम हो जाएं, और वह कभी गिर भी पड़ें तो अधिक चोट न आए। रविवार को छोड बाकी दिन तो मैं वैसे भी दिन भर दफ्तर में रहता हूँ। इसलिए मुझे कोई कष्ट न होगा और सब काम ठीक हो जाएगा।

कहने को तो मैने कह दिया क्योकि बाबू रामदास और मै दोनो एक दूसरे के बहुत निकट हैं, एक ही दफ्तर मे काम करते है और उनकी धर्म-पत्नी को मै 'चची' कह कर पुकारता हूँ, लेकिन कहते समय मै शायद यह भूल गया कि बाबू रामदास की दोनो बडी लडकियाँ जवान है और मै खुद अगर जवान नही तो बुढा भी नही हूँ, अकेला हूँ, और कुछ भी हो पराया हूँ। अगर दरवाजा खुला रहे और इस तरह खुला आना-जाना शुरु हो जाऐ तो कोई मुसीबत खड़ी हो सकती है। ये सब बातें मनगढ़-

न्ते ही नही बल्कि अपने कानो सुनी है, क्योकि बाबू रामदास के कमरे मे जो बात होती है। मेरे कमरे मे साफ सुनाई देती है। मै समझता हूँ कि मेरे पड़ोसियो का यह भ्रम सिर्फ उचित ही न था बल्कि जरुरी भी। क्योकि जवानी मे क्या पता मनुष्य कब क्या कर बैठे ?

और इन सबके अलावा दो एक सुझाव और भी है जिन पर शायद बाबू रामदास और उनके घर वालो को सब से पहले ध्यान देना चाहिए था। पहला यह कि बच्चे को अगर ढोल ही बजाना है, तो क्यो न उसे बाजार से एक ढोल ला दिया जाऐ ? पर, कदाचित बाबू रामदास इस बात से डरते है कि आज अगर उसे ढोल ला कर दे और कल दूसरी बच्चियाँ किसी दूसरी चीज का तकाजा कर बैठे, तो उन्हे ना कैसे करेगे ? और फिर बाजार के ढोल ज्यादा देर चलते भी तो नही है। दूसरा सुझाव यह कि क्यो न दुलार-पुचकार कर मुन्नू की यह आदत ही छुड़ा दी जाऐ, ताकि बाबू रामदास की चहेती कहावत के अनुसार 'न रहे बाँस न बाजे बासुरी'।

लेकिन सवाल यह पैदा होता हे कि अगर कभी कभी मुन्नू को इन ट्रंको पर न बिठाया जाऐ तो कहा बिठाला जाए ? दोनो चारपाई पर दोपहर को 'पीली कबूतरी' और लड़कियाँ—रानी और शीला लेट जाती है। बीच मे या दो तीन मुरब्बा फुट जगह खाली बचती है, जिसमें छोटी लड़कियाँ-मुन्नी और देशी बठकर स्कूल का काम करती है। अब, अगर थानेदार साहब सोये हुए हो तो उन्हे कही भी डाल दिया जाए कोई फर्क नही पड़ता, लेकिन यदि जागते हों तो उन्हे मुन्नी और देशी के पास नही बिठाया जा सकता क्योंकि वह उनकी कापियाँ, किताबें नोचने लगते हैं,एक ही झपट्टे में उनकी सारी स्याही मुँह पर पोत लेते हैं, उनकी कलम-पेन्सिल चबाने लगते हैं और फिर ठुमक-ठुमक कर यह माँग करने लगते हैं कि उन्हे ट्रंको पर बिठाया ही बिठाया जाए।

बात वास्तविक यह है कि या तो शुरू से ही यह आदत न डाली जाती लेकिन अब उनके इस अत्याधिक शौक को सिरे से उपेक्षित कर

देना उनके साथ अन्याय के बराबर होगा, क्योंकि बावजूद उन तमाम चोटो के जो अभी तक ट्रको से गिरने के कारण थानेदार साहब को आई है, उन्हे जो लुत्फ ट्रको पर बैठ कर ढोल बजाने में आता है, उसका कोई मुकाबला नही। फिर कभी-कभी वहाँ बैठे-बैठे उन्हे साथ वाली दीवार पर से कोई छिपकली फिसलती नजर आ जाती है तो वह हँस-हँस कर लोट-पोट होने लगते है। दरअसल दीवार पर रेगती हुई छिपकली उनके लिए इतना आकर्षक दृश्य है कि जब हर रोज सुबह वह बाबू रामदास के साथ जाने के लिए जिद करते है तब यदि कोई उन्हें झूठमूठ भी कह दे "मुन्नू, वह देखो किल्ली!" तो उसका ध्यान बाबू रामदास की तरफ से हट जाता है और वह ट्रको की उस दीवार की तरफ हाथ फैलाने लगते है।

किस्सा मुखतसर ट्रको की दीवार अभी तक अपनी जगह पर स्थित है और जब कभी रविवार के दिन सुबह-सबेरे खटाक-खटाक ऊपर के दो-तीन ट्रंक उतार कर नीचे रख जाते तो मै अपने कमरे पडा, पडा अन्दाज लगा लेता हूँ कि आज मिसेज रामदास, रानी और शीला मे से किसी एक को साथ लेकर अस्पताल जाने की तैयारी कर रही है। सुनता हूँ 'पीली कबूतरी' का पीला रग, जिसके कारण मैने मिसेज रामदास को यह अजीब नाम दे रखा है, कैलशियम की कमी से है। उनको हमेशा आधे सिर में भी दर्द रहता है, जिसका एक कारण शायद यह भी हो कि पिछले तीन चार महीनो से वह एक एक करके अपने सब दाँत निकलवा रही है, जिनमें एक वर्ष हुआ कीडा लग गया था। इसलिए उनका अस्पताल जाना बाकायदा एक प्रोग्राम का रूप ले चुका है।

यह प्रोग्राम रविवार के दिन ही रखा जाता है, क्योंकि बाकी दिनो तो बाबू रामदास सुबह ६ बजे दफ्तर जाते और शाम को छह और सात के लगभग वापस लौटते है। दोनो छोटी बच्चियाँ स्कूल चली जाती है और बडी लड़कियो को अकेला घर पर छोड़ जाना मिसेज

रामदास अच्छा नही समझती । बरहाल रविवार को जब मिसेज रामदास अस्पताल चली जाती है तो बाबू रामदास मुन्नू को उठाकर मेरे पास आ बैठते है—या कम से कम कुछ दिन पहले तो उनका यही नियम था, इधर कुछ दिनो से खिचाव सा हो गया है।

बात तो छोटी सी थी मगर मेरी आशा के विरुद्ध उन्हे शायद चुभ ही गई। सोचता हूँ गलती मेरी ही थी। अगर बोलने से पहले मैंने बात को तौल लिया होता तो यह स्थिति न पहुँचती। हुआ दर-असल में यो, कि कुछ दिनो से मै देख रहा था कि बाबू रामदास हर वक्त एक ही बात को पीसते रहते है।। दफ्तर जाते समय, दफ्तर में, घर पहुँच कर, रात को, रविवार के दिन, जैसे कि वह बात उनके सिर पर सवार हो गई हो। इन नौ दस महीनो मे मैंने बाबू रामदास के अनगिनत दुखडे, अत्यन्त सहृदयता से सुने है, वे भी जो उन्होंने मुझ से कहे और वे भी जिनकी चर्चा उनके अपने कमरे मे हुई। उनकी शिकायतो को दूर करने के लिए उनके साथ बैठकर सोच विचार किया है। मुझे उन साथ सहानुभूति है कि जब वह मुँह लटकाए दृष्टि नीची किए धीरे-धीरे अपनी परेशानियो का वर्णन दुखद लहजे में करते है तो मुझे अपने पिता याद आ जाते हैं।

वैसे तो मेरे दिल में मिसेज रामदास और बाबू रामदास के लिए बड़ा आदर है, क्योंकि सब मुश्किलो के बावजूद कभी वे आपस में लडे-झगडे नही, कभी बाबू रामदास ने गुस्से में रोटी की थाली को ठोकर नही मारी और कभी मिसेज रामदास ने मैके चले जाने की धमकी नही दी। कभी उन्होने मुझे यह नही अनुभव होने दिया कि वह जीवन से निराश हैं। मै इन सब बातो की इसलिए भी प्रशसा करता हूं, क्योंकि हमारे अपने घर मे हर समय सिर-फुटव्वल होती रहती है, कोई किसी से सीधे मुँह बात नहीं करता। खासकर माँ तो बात-बात पर आपे से बाहर हो जाती है और कभी-कभी तो इतना परेशान करती है कि हम सबको नानी याद आ जाती है कि जिसकी बदौलत हमें ऐसी माँ प्राप्त हुई।

यह सब है फिर भी बाबू रामदास और मेरी उमर मे बरसो का अन्तर है, इसलिए कभी-कभी उनकी बातो से थोडा सा ऊब भी जाता हूँ। जिस बात पर कुछ दिन हुए नाराज हो गए उसने तो मेरी नाक मे दम कर दिया। क्योकि जाने हुआ क्या कि उठते-बैठते जहाँ मिलते, जितनी देर के लिए मिलते, बस वही एक रट, "रानी इतनी बडी हो गई है नरेन्द्र साहब! अब तो इसने एफ० ए० की परीक्षा भी दे दी। हमारी तो नीद गायब हो गई है। कोई लडका मिल जाए तो ...। लेकिन लडका हम-जैसो को कहा से मिलेगा? लडको के दिमाग तो सातवें आसमान पर है। कुछ पल्ले हो या न हो, घर ऊचा ढूंढते है, अब आप ही बताइए नरेन्द्र साहब, हम क्या करें ?"

अगर मै उनकी दिलजोही करने के खयाल से कहता, "घबराइए नही सब ठीक हो जाएगा" तो फौरन दबाब देते, "आप नही समझते नरेन्द्र साहब! जब किसी के घर एक लडकी पैदा होती है तो घर की दीवारें कांप उठती है और इधर तो एक नहीं चार है, चार!" अगर मै कह देता कि मुन्नी और देशी तो अभी छोटी है, शीला ने भी इसी वर्ष मैट्रिक का इम्तहान दिया है, अभी तो रानी की ही चिन्ता कीजिए, तो वह कहने लगते, "आप भी भोले बादशाह है नरेन्द्र साहब! लडकियों को बडे होते क्या देर लगती है? आज इतनी, कल उतनी। रानी और शीला में तो वैसे भी कोई फर्क नही। मैट्रिक का इम्तहान बेशक उसने अभी दिया है लेकिन आप से क्या छिपा है, उसकी उमर न होगी तो बीस साल की होगी ही। रानी से सिर्फ एक वर्ष छोटी है। परीक्षा भी को छोडिए। परीक्षा तो अगर आपने न कहा होता, तो हम रानी को न दिलवाते। आप जानते हैं उसे कितने साल हो गए है मैट्रिक किए हुए? पूरे पाँच साल! आप से क्या छिपा है ?"

एक दिन मैंने कह दिया, 'अच्छा साहब, शादी भी हो जाएगी पहले बी० ए० तो कर लेने दीजिए उसे।" वह बोले, "ना भाई ना, बी० ए० से क्या फायदा? हम तो एफ० ए० कर के पछता रहे हैं। सोचिए न

नरेन्द्र साहब, जो चार पैसे हैं, वे एफ० ए०, बी० ए० में लगा दें तो विवाह किस से करेंगे ? आखिर उसके लिए भी तो पैसा चाहिए।" मैंने बात बदलने के लिए कह दिया "कोई और खबर सुनाइए।"

"आप को और खबरो की पडी है और इधर एक-एक दिन गुजारना पहाड होगया हे। आप की चाची तो घुलती जा रही है जैसे गर्मियो में बर्फ। आप समझते नही नरेन्द्र साहब!"

तो इसी तरह के फिकरे सुनते-सुनते मेरे कान पकने लगे। सामने जो बात होती वह भी मेरे धैर्य की कम कडी आजमायश नही थी, उसके साथ उनके अपने कमरे में जो फुस-फुस सुबह-शाम लगी रहती उसकी भनक भी मेरे कान मे पडती अगत्या एक दिन झुँझला कर मैंने वह बात कह दी, जो पिछले कई दिनो से मेरे होठो तक आकर लौट जाया करती थी।

रविवार का दिन था और मिसेज रामदास शायद अपना अखीरी दात निकलवाने के लिए अस्पताल गई हुई थी। रानी को साथ ले गयी थी, घर में सिर्फ मुन्नू थानेदार और शीला थे। थानेदार ट्रंको पर बैठे ढोल बजा रहे थे और शीला कदाचित् उसके पास बैठी सब्जी काट रही थी। मुन्नी और देशो सुबह से ही अपनी मौसी के घर गई हुई थी और बाबू रामदास मेरे पास बैठे हुए कह रहे थे "अब आप ही बताइए नरेन्द्र साहब, रानी मे किस बात की कमी है ? पढी-लिखी है, सीना-पिरोना उसे आता है, घर का काम-काज उससे बेहतर कोई क्या करेगा ? आपने तो सुना ही होगा। मीरा के भजन कितने अच्छे गाती है! रूप-रग भी किसी से बुरा नही। क्या हुआ अगर कद इच-दो इच छोटा है ...।"

उनकी इस आखिरी बात से मै सहमत नहीं। क्योकि यद्यपि इस सारे अर्से मे मैने स्वयं रानी से न कभी पानी का गिलास ही माँग कर पिया है और न किसी के सामने आँख उठाकर उसकी तरफ देखा ही है, लेकिन इतना जरूर जानता हूँ कि उसका कद बिल्कुल उचित ऊंचाई का है। अगर लम्बी नही तो छोटी तो कदापि नहीं।

"सब कुछ हैं नरेन्द्र साहब, लेकिन पैसा नही तो कुछ भी नहीं। सोचता हूँ एक के लिए लड़का ढूढनें मे इतनी कठिनाई हो रही है तो औरो का क्या बनेगा ? हमारी तो मिट्टी पलीत हो गयी नरेन्द्र सहाब !" मैने अपने आप को रोकते हुए, बस इतना ही कहा "चिन्ता न कीजिए सब ठीक हो जायेगा।"

"और एक ये हरामजादे रिश्तेदार है ! जो मुह मे आता है बके चले जाते है ! हम कहते है कि अगर अपने घर बैठे बकवास करते रहे तो भी हमे कोई परवाह नही, लेकिन इधर कुछ दिनो से उन्होने क्या काम किया है कि हमदर्दी जताने के लिए चले आते है। कोई कहता है—फलाँ का लडका है ना, उसकी पहली बीबी को मेरे दस वर्ष हो चुके है, कहो तो उससे भी बात की जा सकती हैं। कोई कहता हैं—हमारी जान पहचान मे एक लडका है तो, लेकिन उसकी एक आँख मे थोडी सी खराबी है। आप हेरान होगे नरेन्द्र साहब, एक ने तो हद ही करदी—अगले दिन मै घर नही था, एक सहाब आए और जाते वक्त रानी की माँ से कह गए कि अगर स्वीकार हो तो उस अन्नतराम से बातचित की जा सकती है। और जानते हो नरेन्द्र सहाब, यह अन्नत राम कौन हे ? हमारी जाति का एक कुबडा साहूकार है, कुबडा .....!"

अब मुझसे न रहा गया, मैने अचानक उनकी बात काटते हुए धीरे से कहा "एक बात कहू आप से।"

बाबू रामदास गुस्से से काँप रहे थे, कुछ बोले नही, कदाचित् उन्होने सुना ही नही।

सुनिए आप रानी का विवाह मुझसे क्यो नही कर देते ?"

बाबू रामदास खन्ना को तो एक साथ कई साँप सूघ गये। उनकी आँखें यो खुल गई जैसे अब कभी बन्द नही होगी। उनके होंठ फड़फड़ाने लगे। उनके हाथ यो काँपने लगे जैसे राशा के रोगी हों। मैं डर गया, लेकिन पूर्व इसके कि मै कुछ और कहता वह एक झटके से उठे और अपने कमरे में चले गए।

इस बात को हुए लगभग अब दो सप्ताह हो गए हे। इस बीच मे एक बार भी बाबू रामदास मेरे कमरे मे नही आए और न ही उन्होंने मुझसे कोई बात की है। यदि कभी अनायास घर में या दफ्तर मे टक्कर हो जाती है तो वह दृष्टि नीची कर लेते है। दो रविवार बीत चुके है चाची ने मुझे खाना खाने के लिए नहीं कहा। मुन्नू थानेदार के ढोल बजाने की आवाज अब भी मेरे कमरे मे आती है। दो दिन हुए कदाचित् वह फिर गिर पडे थे बहुत देर तक रोते रहे, लेकिन मैं उन्हे चुप कराने के लिए नही जा सका।

कुछ नही कह सकता कि बात का अन्त किस तरह होगा, क्योंकि शुरू मे तो दो-तीन दिन ऐसा लगा था जैसे मुझसे कोई ऐसी भूल हो गई हो जिसका प्रायश्चित्त असम्भव हो। जब भी अपने कमरे मे होता यही सुनता—

"आखिर इसे सूझा क्या ?"

"हिम्मत कैसे हुई !",

"मै न कहती थी जो देखने मे भद्र दिखते हे वे .. .."

"पूछो इससे, न हमारी जात मिलती है न गोत्र, न हम तेरे घर-वालो को जानते हैं न .."

इसके बाद तीन चार दिनो के लिए मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे पडोसी इस बात को बिल्कुल भूल से गये हो। दरवाजे के साथ कान लगा कर भी सुनता तो कुछ सुनाई न देता।

इधर तीन चार दिनो से फिर कुछ सर-गोशिया होने लगी हे। शाम को जब बच्चे रसोई आदि का सामान सम्हाल रहे होते हैं तो मुझे बाबू रामदास और 'पीली कबूतरी' अपने कमरे मे बैठ कुछ इस प्रकार की बातें करते सुनायी देते हैं

'एक बात कहूँ, अगर जात का झमेला न होता तो लड़का बुरा नहीं था।"

"ऐसा लड़का तो भागवानों को मिलेगा।"

"बी० ए० पास है, नौकर हैं, एम० ए० की तैयारी कर रहा है।"

"और फिर हमारी हालत से पूरी तरह परिचित है।"

जब से बात ने यह रूप लिया है मेरी परेशानी कम हो गई है और जहाँ तक मेरी धारणा है बाबू रामदास की भी एक परेशानी कुछ दिनों के अन्दर दूर हो जाएगी।

श्री विष्णु प्रभाकर

आकाश की छाया में

आनन्द उन दिनो बहुत परेशान था । बोर्ड के स्कूल मे पाच अध्यापिकाओ की आवश्यकता थी और एक हजार प्रार्थना-पत्र आ चुके थे । आना अभी बन्द नही हुआ था और जैसा कि अभाव ग्रस्त देशो की परिपाटी है—बहुत-से सिफारिशी पत्र भी उनके साथ-साथ आ रहे थे ।

उन पत्रो के लिखने या लिखवाने वालो मे मन्त्री, सचिव, बडे-बडे सरकारी अफसर, जन-प्रतिनिधि, दूसरे प्रतिष्ठित व्यक्ति, सभी थे । उनमे अपरिचित भी थे और परिचित भी, ऐसे परिचित कि एक बधु ने रात के बारह बजे टेलीफोन किया—"हलो, हलो, आनन्द !"

ऊंघता हुआ आनन्द बोला—"कौन है ?'

"कौन है, अच्छा, पहचानते भी नही ? अरे, अभी से यह हाल है !' गुल्ली-डडा किसके साथ खेलते थे, लडते किससे थे, कुट्टी किससे करते थे..... "

अब आनन्द हैं कि खीज रहे हैं, सोच रहे हैं ।

"हलो, हलो, सो गए ? अरे, मैं हूं मदन, मदन टोपा ।"

'मदन, ओह मदन तुम ! रात को बारह बजे कहा से बोल रहे हो, यार ?"

"बोलूंगा क्या जहन्नुम से ! अरे, तुम्हारे ही शहर मे हू ।"

"यानी यही । नही, नही, तुम झूठ बोल रहे हो ।"

यानी हम झूठे भी है। भलेमानस पाच वर्ष से यही हू । 'मेहता एण्ड पुरी' मे।"

"कमाल करते हो, यार, पाच वर्ष से हो और पता तक नही दिया।"

मदन साहब खूब हंसे। कुछ इधर उधर की बाते हुई। फिर बोले—"अरे भाई, सुना है तुम्हारी बोर्ड के स्कूल मे कुछ अध्यापिकाए रखी जा रही है।"

आनन्द का माथा ठनका, बोला—"अरे हा, वह तो चलता ही रहता है।'

"तो हमे भी चला दो न ! मेरी छोटी साली है, नाम है कुसुम !"

"तो यह बात है। साली की चिन्ता है।"

"चिन्ता पूरी है, यार, थर्ड डिविजन है। इसीलिए कष्ट दिया।'

"कष्ट तो क्या है पर..।"

"तो अब मै निश्चिन्त हू, तुम जानो तुम्हारा काम जाने।"

अब नियम से हर रोज टेलीफोन एक बार तो आ ही जाता है। दो-तीन बार स्वय कृपा कर गए हैं। कुसुम भी दर्शन दे गई है। एक मत्री के निजी सचिव ने केवल उसके लिए ही आनन्द को चाय पर बुलाने की कृपा की है। प्रयाग से उनके मामा के साले का पत्र भी आया है।

और पद्मा की तो बात ही क्या है ? रजिया, राजरानी, पुष्पा, नीला, रोज और ऐसे ही अनेकानेक नारियो का इतिहास आनन्द को बार बार सुनना पडा है। रजिया आजकल जिस पद पर है वहा वेतन कम है। राजारानी के विवाह योग्य दो लडकिया हैं। रोज पति के पास आना चाहती है। नीला एम० ए० पास है। पुष्पा के पति अच्छे पद पर हैं चार सौ पाते हैं। पर खर्च है कि पूरा ही नही होता। वे लोग आनन्द के अच्छे परिचित है, लेकिन पद्मा तो आनन्द के एक परम मित्र की मगेतर है और वह परम मित्र एक प्रसिद्ध पत्रकार है......

बेचारा आनन्द ! उसे ऐसा लगता है कि वह इस तूफान में डूब जाएगा। लेकिन डूबना तो मना है और तैरना असम्भव ! परिणाम यह होता है कि आनन्द का दम घुटने लगता है। वह कुछ चाहने लगता है . कुछ.

आखिर आनन्द ने देखा कि गणित के अनेक नियम काम मे लाकर कार्यालय ने पचास प्रार्थियो को मुलाकात के लिए बुला भेजा है। उसने पाया उनमे से ४९ प्रार्थियो से वह खूब परिचित है। पचासवे प्रार्थना-पत्र के बारे मे उसे किसी का पत्र नही मिला। वह किसी सरला नामधारी नारी का है। वह सोचने लगा...

तभी एकाएक सोचना बन्द हो गया। पत्रकार मित्र आगए थे। उन्होने बहुत-बहुत धन्यवाद दिया, कहा—"अब समझूं कि पद्मा का लिया जाना निश्चित है ?"

"कैसे कह सकता हू ?"

"अब भी कुछ कहना है।"

"अभी तो कहना है। पचास को बुलाया है, लेना पाच को है।"

"अरे वह तो दफ्तर का काम है, होता ही है, लेकिन तुम्हे जिनको लेना है उनको लेना है। समझो तुमने हमारी शादी मे यही भेंट दी है।"

आनन्द ठहाका मारकर हस पडा। पत्रकार ने उसमें पूरे दिल से भाग लिया। कहने लगे—"यही होता है, भाई। देखो, अभी शिक्षा विभाग के डायरेक्टर के पास से आ रहा हूं। भतीजे को 'नवीन पाठ-शाला' में दाखिल कराना है। किस किस से नही कहा, लेकिन काम नही बना। आखिर डायरेक्टर से कहना पडा।"

सहसा आनन्द बोला—"हा प्रदीप ! तुमने हमारी योजना पढी ?"

"नही तो...।"

"नही तो क्यों ? सभी पत्रों को तो भेजी थी।"

"भेजी होगी, किसे अवकाश है। लाओ मुझे दो। कल सभी पत्रो

में उसपर चर्चा मिलेगी।"

आनन्द ने कृतज्ञ होकर योजना प्रदीप को दी। वह गए कि मदन आ गए। वह अपने भाई को इजीनियरिंग कालेज में भेजना चाहते थे। उसी के लिए सिफारिशी पत्र लिखवा कर लाए थे। मार्ग में आनन्द को धन्यवाद देने रुक गए। उन्हे पूरी आशा है कि जैसे अब तक किया वैसे ही वह आगे भी कुसुम की मदद करेंगे। कुसुम स्वय भी आई। इसी तरह पुष्पा, नीला, रोज, राजरानी, रजिया आदि या तो स्वय आई या उनके टेलीफोन आए या अभिभावक आए, पर सरला है कि स्वयं तो क्या आती, किसी ने उसकी ओर से धन्यवाद के दो एक शब्द तक न भेजे।

कौन है यह सरला!

आनन्द ने मुलाकात के दिन ही उसे देखा, देखता रह गया। न रूप न रग, न प्रसाधन, पर फिर भी जैसे समूचे कमरे मे उसकी छाया भर उठी है। प्रत्येक प्रश्न को उसने ध्यान से सुना और विनम्रता से उनके उत्तर दिए। वे उत्तर न किसी पुस्तक में लिखा थे, न किसी से पूछ कर रटे गए थे। उत्तर की गहराई से निकले नपे-तुले शब्दो से जैसे प्रश्नकर्ता स्वय उलझ गए। इसलिए जब पचास मे से पाच का चुनाव हुआ तो सरला उनमें न थी। आनन्द ने सबसे पहले उसीका नाम चुना था, पर जब मित्रो के पत्र और प्राथियो के चेहरे उसके स्मृति-पटल पर उभरने लगे तब उसने पाया सरला का नाम वहा नही रह सका है। वह क्या करे। और, वह तो वह, उसके दूसरे साथी भी उससे सहमत है। उन्होने कहा—'सरला की योग्यता मे कोई सदेह नही, पर हमें जैसी अध्यापिका चाहिए वैसी वह नही है। वह गहरी है, पर साथ ही बहुत गम्भीर भी है। योग्य है, पर उसका प्रभाव छा जाने वाला है। ऐसा जान पडता है कि उसके अन्तर में कहीं टीस है, जो उसे खुलने नही देती। ऐसी अध्यापिका के हाथ में बच्चियो को सौंपना खतरे से खेलना है।"

इस सर्वसम्मत निर्णय से आनन्द को बड़ी राहत मिली, फिर भी उस रात वह सो न पाया। बहुत देर तक टैलीफोन आते रहे। पाचो प्रार्थियो के अभिभावक उसके अत्यन्त कृतज्ञ थे। उन्ही के शब्दो में आनन्द ने उन्हे उभार लिया था। वे समझ नही पा रहे थे कि कैसे उसका बदला चुकाया जा सकेगा। पद्मा तो भावावेश मे ऐसी हो रही थी जैसे अब रोई, तब रोई। और कुसुम सचमुच रो पड़ी। आनन्द भी कम भावुक नही है। उसे भी कण्ठावरोध हो आया। आधी रात इसी झमेले मे बीत गई तो उसने सोने की चेष्टा की, पर तभी उसे लग जैसे उसके हृदय मे टीस उठ रही है। 'क्या कारण हो सकता है ?' उसने सोचा।

उत्तर मिला—तुमने जो चुनाव किया है वह योग्यता के आधार पर नही किया है।'

वह तो सदा ही ऐसा होता है।' और उसने करवट बदलकर आखे मीच ली, पर उस अन्धकार में तो सरला की मूर्ति और भी स्पष्ट हो उठी। फिर तो ज्यो ज्यो वह आखो के द्वार और जोर से बन्द करने का प्रयत्न करता, त्यो त्यो सरला का रग और भी निखरता चला आता। कुसुम, पद्मा, रोज, नीला, रजिया सब उसकी छाया में ऐसे ही खो जाती जैसे सूर्य की छाया में तारागण छिप जाते है तब घबराकर उसने आंखें खोल दी। उसे लगा जैसे उसने कोई पाप किया है, जैसे उसने किसी निर्दोष की हत्या कर डाली है...वह फुसफुसाया—"ऐसा तो कभी नही होता ? मित्रो की बात तो माननी ही पड़ती है। सभी मानते है। बच्चे को स्कूल में दाखिल कराना हो, मकान किराये पर लेना हो, पुस्तक कोर्स मे लगवानी हो, मुकदमे में न्याय करवाना हो, यहां तक कि किसी प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर करवाने हों, तो यह सब मित्रो की सिफारिश से ही होता है। आखिर यह मेलजोल, ये मित्र हैं किस दिन के लिए...।"

"पर यह सब बुरा है।"

"जिस काम को सब करते है वह बुरा नही होता ।"

"लेकिन सरला ने नही किया ।"

"हा, सरला ने नही किया । क्यो नही किया ? वह एक बार भी मेरे पास आती तो क्या उसे नौकरी न मिलती! वह कितनी योग्य है, कितनी शात-सौम्य ! लेकिन वह आई क्यो नही ? क्यो उसने अभिमान को अपने ऊपर हावी होने दिया ? क्यो ..क्यो ..?"

"और जब उसने अभिमान किया तो भुगते । मुझे क्यो परेशान करती है ?

और आनन्द ने फिर नेत्र मूदकर सरला से मुक्ति पानी चाही, पर सरला ने उसे पकड़ा कहा था जो मुक्ति मिलती ! वह तो स्वय उसकी उपचेतना थी जो उसमे छल कर रही थी । इसलिए वह रात भर लुका छिपी का खेल खेलता रहा । सबेरे उठा तो अग-अंग दर्द कर रहा था । उसनें किसी से कुछ नही कहा । चुपचाप घूमने के लिए निकल पडा । कुछ देर चलने के बाद उसने अपने आपको वहा पाया, जहा एक ओर पंचमजली आलीशान इमारतें खडी थी और दूसरी ओर, ठीक उनके पीछे वे गन्दे और बदबूदार अस्तबल थे, जिनमें आजकल घोड़ों के स्थान पर सभ्य इन्सान रहते थे ।

देखकर आनन्द का मन भर आया । लोग उसी गन्दी और पानी से भरी सडक पर सो रहे थे । कुछ खाट पर थे, कुछ ठेलो पर । एक बुढिया अपने जैसी ही एक आराम कुरसी पर सोने का नाट्य कर रही थी । कुछ युवक सूखी जमीन पर एक दूसरे में उलझे पडे थे । न बिछावन, न ओढना, शरीर पर भी दूसरा वस्त्र नही । पास में ही गाय-भैस और घोडे पिछले दिन की थकान उतार रहे थे । उनसे बचता हुआ वह एक अस्तबल के सामने आ खडा हुआ । यही सरला का पता था·········।

सामने देखा किवाड खुले है और अन्दर का सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा है । कोई कमरा नही, परदा तक नही; पर जो है उसमें नियम

है। सामान संक्षिप्त है, पर व्यवस्थित है। बीच मे एक खाट बिछी है, जिसपर एक पुरुष लेटा है। शायद पति है। उसी के पास फरश पर सरला बैठी है। उसका एक हाथ पति के वक्ष पर है दूसरा एक शिशु की पीठ पर जो अपने तीन भाई-बहनो के साथ मा के पास धरती पर लेटा है।

आनन्द का मन और भीग। वह खोया-खोया सा आगे बढा तभी उसे लगा जैसे वे लोग बाते कर रहे हैं। वह ठिठक कर पीछे हट गया। एक क्षण बाद पुरुष का निराशा से कापता हुआ स्वर उसके काना मे पडा।

"तो यह स्थान भी नही मिला ?"

सरला बोली—'नही, नही मिला। आशा भी नही है।"

पुरुष ने जैसे पूरी बात नही सुनी, कहा—"मैने पहले ही कहा था पर तुम सुनो तब न! बिना सिफारिस क्या कही कुछ होता है ?"

सरला बोली—"जानती हूं, पर हमारा ऐसा कौन परिचित है जिसका प्रभाव उन पर पड सकता। अब तो एक ही काम हो सकता है।"

पुरुष ने उठते हुए पूछा "कौन-सा काम ?"

इस बार आनन्द ने दृष्टि चुराकर फिर भीतर झाका। देखा पुरुष के मुख पर प्रभु की करुणा बरस रही है, नेत्र ऊपर को उठे हैं। वह काप उठा—ओह, यह तो नेत्रहीन है······ ।

पुरुष फिर बोला—"तुम क्या करने को कहती हो ?"

सरला दो क्षण चुपचाप बैठी रही। तेजी से बेटे की पीठ पर हाथ फेरती रही। उत्तर न पाकर पुरुष ने अपने हाथ से सरला का मुंह टटोलना शुरू किया, टटोलता रहा फिर फुसफुसाकर कहा—"कहो, क्या करने को कहती हो, मै बुरा न मानूगा।"

सरला के गले मे बाक रुकी थी। सहसा पति के मुह की ओर मुंह उठाकर वह बोली—"कहती थी अब चिट्ठी से काम न चलेगा।"

'तो।"

. .

"बोलो सरला, बोलो।"

"मुझे शरीर का सौदा करने की आज्ञा दो। बोलो रोगे . ?

निमिष मात्र मे यह भुकम्प-जैसा स्वर आनन्द के कानो से होकर त्रिलोक मे व्याप्त हो गया और जब टूटे हुए ग्रह की तरह वह वहा से भागा तब गन्दे पानी के छीटो से विशाल अट्टालिकाओ की दीवार गंदी हो गई तथा धरती पर सोये हुये स्त्री-पुरुष चीखकर उठ बैठे।

घर

बरखा की रुत, भीगी हवाएं, सवेरे-सवेरे बस्ती के बाहर वाली कच्ची सड़क पर दो रही बातें करते चले जा रहे हैं।

एक—बस तो हमने सोचा कि अब बना ही डालें।

दूसरा—बहुत ठीक सोचे, बड़ी दूर की कौड़ी लाए।

एक—फिर हमने कहा, लाओ भाई चूनन से भी पूछ लें। देखें, वह क्या कहते हैं।

चूनन—मैं क्या कहूंगा हकीम जी, हां में हां मिलाऊंगा।

हकीम—तो है राय ?

चूनन—पक्की।

हकीम—सोची समझी ?

चूनन—अजी रुपए में साढ़े सोलह आने।

हकीम—फिर न कहना, 'हकीम जी, ईंट-चून में कहां रुपया झोंक दिया।

चूनन—यह उल्टी गंगा, और मैं बहाऊंगा !

हकीम—हां, यह कहने का न हो कि सदा के यार, एक जगह रहे-सहे अब मरने को बैठे, तो जंगल में बसे।

चूनन—हकीम जी, घर बना लो तब बात करूंगा। मैं तुम्हें कब छोड़ता हूं।

हकीम—बस, तो आओ भई जरा बैठ लें। (दोनो बैठते हैं) जरा अपनी छड़ी देना भई, सोचा यह है कि (जमीन पर छड़ी से निशान डालते हुए) जैसे यह रहा जमीन का टुकडा···यह पूरब में बुद्धसैन की अमराई है।

चूनन—चलिए, जानता हू।

हकीम—और देखो भई, पश्चिम में······

चूनन—पटवाताल भरता है, बडी मुरगाबी गिरती है जाडो में।

हकीम—और देखो, दक्खिन मे बरसाती नाला है और उत्तर में कई बीघे खाली जमीन है जिस पर··· ··

चनन—अभी कुछ न बनाना।

हकीम—चलिए, नहीं बनाते। अच्छा यह तो हो गई चार-दीवारी। अब भीतर आओ।

चूनन—आगए, यह पूरब रुख दरवाजा रक्खा है न ?

हकीम—हा, अब तो भीतर देखो—यह चबूतरा रहा दालान के पीछे, ये अगल-बगल कमरे।

चूनन—चले चलिऐ, रुक क्यो गए। ठीक बन रहा है, जाडे गर्मी का तो यह इन्तजाम हो लिया, अब रही··· ··

हकीम—बरसात। तो भई, बरसात में छत पर खपरैल में सोया करेंगे।

चूनन—ठीक है। मच्छर-पिस्सू मे बचे रहिएगा। हल्की-हल्की पछवा, छम-छम बूदें, दूर-दूर बिजली के कौधे। हकीम जी, घर नही बहिश्त बना रहे हो, बहिश्त !

हकीम—अच्छा चबूतरे से उतरे तो देखो यह रहा बावर्चीखाना, और यह इससे मिली हुई नाजपानीकी कोठरी और इन्धन-लकडी की बुखारी और·· और यह···यह बडे दरवाजे से लगी हुई बैठक, आप उठे-बैठें, महमान ठहर जाए, और जब चाहो पिछले किवाड बन्द कर दो, मरदाने का जनाना हो जाए। कहो भाई क्या कहते हो ?

चूनन—कहूं हकाम जी, आपने घर बनाया, तो भाई हमने भी बना डाला, चलो, यही सही। खाली जमीन का आज ही बयाना दिया। कल रजिस्ट्री कराई और परसों तुम्हारे पड़ौस में नीम खुदी।

हकीम—चूनन, होश की बातें करो, क्या सचमुच ?

चूनन (हंस कर)—अजी तो आप से कुछ दब कर हैं। यह घर तो अब बनेगा।

हकीम—यों नहीं चूनन, यह लो अपनी छड़ी, घर की दागबेल डाल चलो, हमारी उत्तरी दीवार तुम्हें खूब मिली।

चूनन—हां, देखो तो क्या डौल डालता हूं। छड़ी से निशान डालते हुए) देखो, ये दीवारें हुईं, यह तीन दर का दालान और ये आस-पास कमरे हमारे आदमी ही कितने हैं। लड़का है, उसकी बहू है, इन दोनों के लिए बहुत हैं। बड़ा सा आंगन रखूंगा। यह इधर फसल की तरकारी बो ली और एक-आध नीबू का दरख्त लगा लिया। और हां, तुम जो भूले हकीम जी, वह इस घर में होगा, यह देखो पक्का कुआं।

हकीम (हंस कर) उल्लू ही समझा किए तुम हमें। अरे भैया, मेरा नक्शा देखो, यह रहा २१ हाथ का तली-तोड़ कुँआ।

चूनन—ठीक कहा जी। बस, तो आ जाओ फिर मेरे नक्शे पर, गरमी-बरसात लड़का-बहू कोठे पर सोया करेंगे। बरसाती बना दूंगा।

हकीम—वह किस रुख ? बरसात का पानी किस रुख बहेगा।

चूनन—उधर उत्तर को और क्या ?

हकीम—यानी मेरी छत पर !

चूनन—हमारे परनाले गिरेंगे।

हकीम—यह तो न होगा।

चूनन—और कहीं गिर नहीं सकते।

हकीम—गिरें, न गिरें, अपनी बला से। मेरी छत पर नहीं गिर सकते। कानून खुला हुआ है।

चूनन—कानून-पानून अपने घर में बघारिए हकीम जी ये चूनन के

परनाले हैं। अब तो बन चुके और उत्तर ही को गिरेंगे।

हकीम—मैं नालिश ठोक दूगा, तामीर रुकवा दूगा, अदालत को मौका दिखा दूगा।

चूनन—ठीक है, मगर ये सब पीछे की बाते हैं। पहले यह घर बनेगा। इस में बरसाती बनेगी। बरसाती के परनाले उत्तर वाली छत पर ही गिरेंगे। कर लीजिए क्या करते हैं।

हकीम—मैं तुम्हें कैद करा सकता हू। यह जमीन ही नही खरीदने दूगा। इसे खरीदने का हक मुझी को है।

चूनन—कर के देखाना ! हार जाऊगा तो अपील लडूंगा। वहां भी हारूगा तो सुप्रीमकोर्ट तक जाऊगा। परनाले तो हकीम जी वही गिरेंगे, जहा चूनन के मुंह से निकला है।

हकीम चूनन के मुंह से निकला, तो झक मारा चूनन ने।

चूनन—हकीम जी कपडो से न निकालिएगा, हा देखिऐ।

हकीम—नही तो ?

चूनन—बना-बनाया घर बिगाड दूगा।

हकीम—तुम। (हस कर) वह कैसे ?

चूनन—ऐसे‥ …(पाव से जमीन रगड कर) यह लो अपना घर। और यह मिटा तो, मेरा घर कहा !

हकीम—जाहिल आदमी, यह क्या किया ?

चूनन—हकीम जी, न जाने हम तुम कहा थे इस वक्त ! यह जमीन तो म्युनिसिपैल्टी की है।

दोनो पिनकी थे।

श्री हृदयनारायण मेहरोत्रा 'हृदयेश'

परदे की दीवार

मिस्त्री मुंशी बरतावरलाल की ओर आश्चर्य से घूरता हुआ कह रहा था. ."भला यह दीवार कही टेक लगाने से खडी रह सकती है ? आप ही देखिए न कितनी लम्बी-लम्बी दरारे बन गई है । बॉयी ओर तो इतनी कमजोर है कि जरा-सा धक्का लगा नही कि गिर पडेगी। आप इसे उतरवा कर दूसरी बनवाइए, वरना यह गिर कर मकान के दूसरे हिस्से को भी दाब लेगी।"

"नही इतनी कमजोर तो नही है कि एक बरसात भी न झेल सके। पुरानी हड्डियों मे बडी ताकत होती है मिस्त्री जी !" यह कह कर मुंशी जी खोखला ठहाका लगा कर हंस दिए थे। खोखला इसलिए था वह, क्यो कि वह कत्रिम था, स्वत न फूटा था। वह भी जानते थे कि दीवार वास्तव मे कमजोर और गिराऊ हो गई है और उसे उतरवा देना ही ठीक होगा। पर केवल उतरवा देने से काम चल नही सकता था। परदे की दीवार थी वह। उस के स्थान पर तो उसी समय दूसरी उठ कर खडी हो जाना चाहिए, नही तो घर की बेपरदगी होती थी। और इस उतरवाने-बनवाने का अर्थ था कि पास में कम से कम चार-सौ रुपया हो। किन्तु इस समय वह पच्चीस रुपए का भी प्रबन्ध नही कर सकते थे। उन की हालत खस्ता थी। पर बाहर वाले तो ऐसा नही समझते थे उन्हे, और न वैसा समझाने की उन्हो ने कभी

कोशिश ही की थी।

मिस्त्री दीवार के निकट आकर उसका निरीक्षण करने लगा था। मुंशी जी भी निकट चले गए। वह कहते रहे—'बस, मैं चाहता हूं सिर्फ यह बरसात कट जाए। फिर तो इसे मैं उतरवा कर दूसरी बनवा लूंगा। बरसात के दिनों में नए काम में हाथ लगाना जरा ठीक नहीं रहता।"

इसी समय मिस्त्री के थपथपाने से एक स्थान से थोडी मिट्टी और दो-एक ककैइयाँ ईंटे खिसक कर गिर पडी। उस का अविश्वास और बढ गया – "देखा आप ने ? कितनी कमजोर है। एक पानी भी झेल सकना मुश्किल है।"

"हाँ, कमजोर तो है ही, पर टेक लगाने से मजबूत हो जाएगी। तुम दो-तीन अच्छी टेके लगा दो, बस।"

"आप मालिक हे, जो हुक्म दे। लाइए सामान दीजिए।"

मुंशी जी ने कोठरी से दो-तीन बल्लियाँ निकाल कर दे दी।

वह परदे की दीवार वास्तविक अर्थ में परदे की दीवार थी। घर की वास्तविकता पर वह सदैव परदा डाले रहती। उसकी आड में मुंशी जी दिन भर एक फटा-पुराना अंगौछा लपेटे रहते, उनके दोनो पुत्र पुत्रियाँ, बहुये फटे चीकट वस्त्र धारण किए रहती। नए-पुराने बानो से से बिनी आँगन मे खडी जर्जर चारपाइयाँ सहन मे रखे बदबूदार बिछौने, इधर-उधर बिखरा टूटा-फूटा गृहस्थी का अन्य सामान इसी की ओट मे छिप जाते। इसी के पीछे चोका-बर्तन से ले कर नाली की कीचड निकालने तक के गंदे-निकृष्ट काम किए जाते। इसी के पीछे बाहर पहने जाने वाले वस्त्र धोए जा कर उन पर फूलके लोटे से इस्त्री की जाती है और बाहर के किसी व्यक्ति को कानो कान खबर तक न होती। यह दीवार अभाव के कारण दिन-रात बहुओ के बीच होने वाले कलह पर भी परदा डालती। गाली-गलौजो की भद्दी आवाजे बहुत-कुछ इसी से टकरा कर अन्दर रह जाती। और इस कलह को शांत करने के लिए

पुत्र मार-तोड के जो उपाय और मुशी जी छाती पीटने, पृथ्वी पर सिर दे मारने तथा कुए में फांद पडने के जो स्वाँग किया करते उस पर भी यह परदा डाल कर सडक पर चलने वाले राहगीरो तथा पडोसियो को उन का दर्शक न बनने देती। वस्तुत यह परदे की दीवार उन की मर्यादा की दीवार थी। इस मे टेक लगा कर उन्होने अपनी कमजोर मर्यादा में टेक लगा ली थी।

मिस्त्री के जाते ही मुंशी जी अपनी कोठरी मे चले गए और धोती तथा बंडी उतार कर उन्होने गदा-फटा लाल अगोछा धारण कर लिया। अनन्तर वह एक-एक कर उस मामान को निकाल निर्धारित स्थानो पर रखने लगे, जो उन्होने मिस्त्री को बुलाने के पहले छिपा दिए थे तभी उन्हे सुनाई पडा—"चुडेल, खसम दो पैसे क्या कमाने लगा इतराकर चलती है। छोटी होकर मुझ पर हुक्म चलाएगी ?"

हा, चलाऊंगी—चलाऊगी। खिलाती नही हू, सुनलो, एक वक्त चूल्हा तुझे भी फूंकना होगा।"

"जरा तो शर्म कर डाइन-अभी तक मेरा ही खाकर पली है। घब-डाम्रो नही, दो चार दिन मे उनकी छूटी नौकरी लग जाएगी। श्रोफ श्रो खसम के साठ रुपल्ली पर इतने जोर! यह कैसी जल्दी भूलगई कि देवर को हमी ने पढाया है।"

"तो ताने भी तो बहुत मारे, सब जानती हूं। आप तो अच्छा खाती और चमकती थी और उन्हे सडा-गला फटा-पुराना देती थी। मुझे खूब पता है। अब मै अपने बच्चो का करती हू तो तुझे क्यो फूटी आंखो नहीं सुहाता, तू क्यो जलती है?"

"चुडैल—।"

"चुडैल तू डाइन तू, राक्षसनी तू!"

अब तक मुंशी जी आगन मे पहुच गए थे जहा दोनो बहुए चडी का रूप धारण किए लड रहीं थी। मिमयाती आवाज मे वह गरजे—"यह क्या तमाशा बना रखा है? यह घर है या सराय ?"

"बापू, मुझे अलग कर दो। मै भीख माँग लूगी पर इस चुडैल के साथ नही रहूँगी। दिन-रात सुना-सुना कर ताने मारती रहती है।" बडी बहू रो दी।

'तो मै कब तेरे साथ रहना चाहती हूँ।" छोटी बहू ने मुँह चिढाया—'मुझे रोज-रोज क्या कुत्तियो से मास चुनवाना पसद है।

बडी बहू की क्रोध से बतीसी भिच गई। चीखी—

"छिनाल!"

"हरजाई!" वैसा ही तीखा उत्तर आया।

दोनो को ऐसे चुपते न देख कर मुशी जी ने हुमक्कर सीने पर दो घूंसे मारे और आँगन मे चारो खाने चित्त गिर पडे। रो कर बोले—"लो खूब लडो। मेरी लाश पर लडो। मैं मरू तो रोना मत, कसम है लडती रहना। हाय, बुडापे मे मेरी बनी बनाई इज्जत धूल मे मिल गई। और यह कहते हुए वह पलट कर ताबड-तोड पृथ्वी पर सिर दे मारने लगे।

इस क्रिया का शीघ्र ही प्रभाव पडा। बडी बहू बडबडाती हुई अपनी कोठरी मे चली गई। छोटी बहू भी बडी को गाली सुनाती वहाँ से खिसक गई। उन दोनो के जाते ही मुशी जी भी उठ कर अपनी कोठरी मे चले आए।

चले तो वह आये किंतु उनका हृदय कडवाहट से भर गया था। नस-नस मे वेदना दौड गई थी। उन का स्वभाव कुछ ऐसा हो गया था कि जब कोई उन से अलग होने या बटवारा करने की बात करता तो उन के हृदय पर हथौडे चलने लगते। यही बात उन्हे सब से अधिक अप्रिय लगती। और इधर कुछ दिनो से वही अधिक उठ रही थी।

अलग होने का दुष्ठपरिणाम मुँशी जी से अधिक कौन समझ सकता था? एक पुत्र अलग हुआ नही, फिर दूसरा भी हो जाएगा। घर की वास्तविकता, जो अभी तक ढकी थी, फिर उसे खुलते कितनी देर लगेगी? अभी उन्हे अपनी दो जवान लडकियो की शादी करनी थी।

पेंशन के सरकार से पन्द्रह रुपये मिलते थे उनमे उनकी शादी करना तो दूर, इस महगी मे वह अपना और उनका पेट भी न भर सकते थे। अलग होने पर कहीं कोई किसी की मदद करता है ? सब अपना अपना देखते हैं। फिर घर के इस एके से कस्बे मे जो उनकी इज्जत थी, वह भी धूल मे मिल जाएगी। रात को भोजन से निबट, जब वह पंडित रामखिलावन के चबूतरे पर मोहल्ले के अन्य बुजुर्गों के साथ बैठते तो रामदीन कहता—'मुंशी जी तुम बडे भाग्यवान हो, जो तुम्हारे घर मे एका है। आजकल लडको की शादी हुई, कि अपना घरुआ-चरुआ अलग करते हैं।"

मुंशी जी सीना फुलाकर उत्तर देते—"यह सब आप लोगो और भगवान की असीम दया है।" फिर रुक कर मुस्करा देते। कहते—"मैने तो बचपन से ही अपने लडको को यह शिक्षा दी कि आपस में प्रेम से रहो। आप देखते ही हैं कि आज उनमें राम और भरत जैसा प्रेम है। उनका जैसा प्रेम इस कस्बे में तो आपको देखने को मिलेगा नही।"

तब ठाकुर सुजानसिह बोल उठते—मै तो कहूं मुंशी जी यह लुगाइयाँ अगर फूट के बीज न बोएं तो भाई-भाई मे आपस मे बैर हो ही नही। उनमें बैर कराने की जड ये लुगाइयाँ ही होती है।"

इस पर अन्य लोग हा में हा मिलकर एक-दो उदाहरण सुनाने लगते। किन्तु मुंशी जी भावना मे बहकर अपनी बहुओं की बुराई नही करते। वह बडी चालाकी से उनकी बात दबाकर कहते—'ठाकुर साहब, वैसे कहते तो आप ठीक है, पर अगर लडके ठीक हों तो लुगाइयाँ कुछ नही कर सकती। रहीम दास ने कहा ही है—

"जो रहीम उत्तम प्रकृति, का कर सकत कुसग।
चन्दन विष व्यापत नही, लपटे रहत भुजग॥"

उचित अवसर पा कर पंडित राम खिलावन इसी समय वार्तालाप को एक नया मोड दे देते। वह दार्शनिक स्वर मे कहने लगते—'प्रेम

में जितने गुण है, फूट में उतने ही दोष है। तभी तो हमारे ऋषि-मुनियो ने प्रेम का इतना महातम बखाना है। सन का एक-एक तार मिलकर रस्सी बनती है। एक-एक मिलकर ग्यारह होते है। दूर क्यो जाओ, मुँशी जी को ही लो। आज जो इनके पास चार-पैसे और इतनी जायदाद है वह इसी प्रेम की बदौलत है। अगर किसी कारण आज उसका हिस्सा-बाँट हो जाय तो इनकी क्या ऐसी दशा रहेगी ?"

इस बातचीत का एक-एक शब्द मुँशी जी की आत्मा को गुद-गुदा देता उनके रोम-रोम में प्रसन्नता व्याप जाती। उनका चेहरा खिल उठता, आँखें चमक जाती और सीना उभर आता।

कोठरी की देहलीज पर बैठे शून्य दृष्टि से शून्य आकाश को ताकते मुँशी जी निश्चय करते कि जैसे भी होगा वह अपने जीते-जी पूर्वजो की सम्पित्ति बटने न देगे। इसी में उनकी इज्जत है। अपने इस निश्चय को सफल बनाने मे उन्हे पुत्रो से पूर्ण सहयोग मिलने की आशा थी। वे अब भी पितृ-भक्ति और आज्ञाकारिता की प्रतिमूर्ति थे।

× × ×

इस बार घर मे पूर्व की अपेक्षा कुछ अधिक दिनो तक शान्ति रही—यहाँ तक कि बहुओ में छोटी-मोटी तकरारे भी नही हुई। इस शान्ति से मुशजी प्रसन्न थे उन्हे विश्वास हो गया था कि पुत्रो ने बहुओ को प्रेम और एके का महत्व समझा दिया है और वह भलीभाँति समझ भी गई है। किन्तु दो-एक दिन बाद उन्हे अपनी त्रुटि का ज्ञान हुआ। यह शान्ति समुद्र की उस शान्ति जैसी सिद्ध हुई, जो अपने भीतर एक भयकर तूफान छिपाए रहती है।

सध्या का समय था। आसमान पर काले बादल घिरे थे मुँशी जी आँगन मे चारपाई पर बैठे छोटे पुत्र से बडे पुत्र की नौकरी के बारे में परामर्श कर रहे थे। बडा पुत्र सुबह से नौकरी की दौड धूप मे गया अभी लौटा न था। इसी समय छोटी बहू तेजी से वहाँ आकर बोली—"मै अब इस घर मे एक मिनट नही टिक सकती। मेरे पैसे चोरी होने

लगे है । यह सब उसी को करतूत है।"

'उसी' का अर्थ चौके मे बैठी बडी बहू समझ गई थी । वह भी गरजती हुई वहा आ धमकी—"देखो जबान सम्हाल कर कहा करो।"

"जबान सम्हाल कर क्या ? तूने चुराए नही ?'

'चुप चुडैल ! झूठ बोलती है। झूठ बोलते, हाय तेरी जबान भी कट कर नही गिरती। मै कसम खा सकती हूँ, जो तेरे पैसे देखे भी हो।"

शायद कही रखकर भूल गई हो। जाओ, ठीक से देखो।" बात के अधिक बढ जाने के भय से छोटे पुत्र ने पत्नी को समझाया।

"हाँ हा मै तो भुलक्कड हूं, मै तो पागली हू । मेरे तो कुत्ते ने काटा है जो बेकार किसी को दोष लगाती हूँ। कान खोलकर सुन लो, अब मै इस घर मे एक मिनट भी नही रहूँगी। आज मेरे पैसे गए है, कल रुपये जायगे और परसो दूसरी चीज, और तुम कहोगे कि मै कही रखकर भूल आई।'

अब मुशी जी भी चुप न रह सके। बोले—"सब समझता हूँ। मै मूर्ख नही हूँ। अलग होने के लिए ही रोज-रोज यह सब झूठे-मूठे बखेडे उठाए जाते है।"

"हाँ, तुम तो ऐसा कहोगे ही ।" छोटी बहू उबल पडी—"तुम्हे तो एक मे मिलाए रहने में फायदा है। बैठे-बैठे लडको की कमाई की मुफ्त की रोटियाँ. ...।"

"चुप ससुरी ! बापू से जवाब-सवाल करती है ?" छोटा पुत्र बीच ही मे गरज पडा। वह क्रोध से काप रहा था। उसके सामने उसी की पत्नी, उसके बापू का अपमान करे! उसने हुमक कर पत्नी पर लात चला दी।

लात पूरे वेग से कूल्हे पर बैठी थी। पत्नी लडखडा कर गिर पडी। उसको गिरते देखकर बडी बहू अपनी मुस्कराहट न रोक सकी। छोटी के तन-बदन में आग लग गई। वह गर्ज उठी—"छिनाल, हंसती है।"

सब समझती हूँ। तुम सब ने मुझे मार डालने की सोची है। तुम सब के मुँह पर कालिख पुतवा दूगी।"

इस गर्जन के सम्मुख बडी बहू खिसक गई। किन्तु पति का पारा और अधिक चढ गया। वह क्रोध मे जैसे पागल हो गया। तावड-तोड लात-घूसे चलाने लगा—"ससुरी, बाहरवालो को सुनाती है! चुडैल का गला घोट दूँगा चुपी नही।"

पर चुपने के स्थान पर उसका स्वर और भी ऊँचा हो उठा—"मुझे मार डालो, पर चुपूगी नही। मै तुम लोगो के मुँह पर कालिख पुतवा कर रहूँगी हा।—हाँ-हाँ, मारो खूब मारो! हाय, मार डाला...मार डला! वह बेतहाशा चीखने लगी।

इस चिल्लाहट के सम्मुख पहले तो पति घबडा गया। समझ मे न आया क्या करें। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने हथेली से पत्नी का मुह दबा दिया और घसीटता हुआ उसे सब से अन्दर वाली कोठरी मे खीच ले गया। वहाँ अंदर ढकेल कर उसने बाहर से किवाड बद कर दिए।

चिल्लाहट धीमी होकर खामोश पड गई थी। केवल नागिन जैसी फुफकार सुनाई देती थी।

आगन मे खडे मुँशीजी की आँखें गीली हो गई। उनकी वेदना आज सीमा तोड चली थी। बहू की आवाज दीवार लाँघ कर बाहर निकल गई थी, जिसके फलस्वरूपसडक पर राहगीरो और मोहल्लेवालो मे फुसफुस हो रही थी। उनकी इस वेदना से द्रवित होकर ही जैसे उस समय बादल भी गीला हो गया। टप टप कर बडी-बडीबूदे धुँआधार पडने लगी।

उधर कोठरी के कड़े से बँधी धोती के फंदे मे जैसे ही छोटी बहू ने गर्दन डाली, वैसे ही बाहर खडी परदे की दीवार, टेको की अवहेलना कर, अररररा कर गिर पडी।

बुल्ली

मुन्शीराम का रग इतना काला था, कि लोग प्रय यही कहा करते, आबनूस और तवा भी उससे पनाह् माँगते हैं। उनके हिस्से की सियाही भी उसने छीन ली है। कई-कई तो यहा तक भी कह जाते कि विधाता ब्रह्मा सृष्टि रच कर उसका लेखा लिख रहे थे, तो उनकी लेखनी मे सियाही बहुत आ गयी, गाढी थी, उन्होंने कलम जो छिटकी, तो सियाही से मुशीराम बन गया। इसीलिए उसकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण थी, क्योकि सियाही विधाता की लेखनी से आई थी। काला अक्षर भैंस बराबर होता ता भी कोई बात थी, पर उसके लिए तो काला अक्षर बताख सा ही था। क्योंकि भैंस भी काली और अक्षर भी काले, वह काले अक्षरो मे भी जो सफेदी बच जाती है उसे ही समझता था, बाकी सब काली-काली च्यूँटिया जो सफेद जमीन पर चली जा रही हो। इस पर भी उसकी तीक्ष्ण बुद्धि पर उसे ही नही सबको नाज था। गाव वालो का यह विचार जाने कहा तक ठीक है, कि भगवान ने अच्छा किया, कि मुंशीराम पढा लिखा नही था। जैसे उसे न पढ़ने देने में भी भगवान ही का हाथ था। क्योंकि यदि वह पढा लिखा होता, तो आकाश कुसुम तोड लाता, आसमान मे छेद कर देता, और आसमान सदा के लिए रोता रहता। सो अच्छा ही हुआ, बेपढा होने पर भी जब उसका यह हाल है कि स्टेशन का बाबू, डाकखाने का पोस्टमास्टर,

हस्पताल का डाक्टर गाव का जैलदार, शहर का कोतवाल, हलके का पटवारी, और तहसीलदार, कचहरी का पेशकार सब उसकी मुट्ठी में बन्द है। जो चाहता है, करवा लेता है, और यदि पढा होता तो··· बस इसके आगे गाव वालो की कल्पना काम न देती थी। वह भय से हाथ जोडकर भगवान की इस अलक्ष्य कृपा के प्रति धन्यवाद प्रर्दशन कर देते थे।

इन सब गुणो के साथ मुशीराम में एक और गुण कह लीजिए या अवगुण भी था, वह बच्चो को चिढाया करता, वे खीझ उठते, उसे चिढाते, और वह खुश होता। शायद वह बचपन में, बच्चो द्वारा हुई अपनी उपेक्षा का बदला बच्चो को तग कर के चुकाना चाहता था।

वह गाव वालो के काम भी कम न आता था। किसी को मुकदमा लडना हो, डिप्टी को अर्जी देनी हो किसी की जायदाद रहन, बै, करानी हो, डाकखाने मे तार देना हो स्टेशन पर माल बुक कराना हो, अस्पताल में मरीज को दिखाना हो, उसकी सब सहायता लेते थे और लोगो की यही छोटी-मोटी नि स्वार्थ सेवाओ से कुछ ही वर्षो मे उसने नया मकान खडा कर लिया अपनी शादी कर ली, बच्चे भी हुए, और देखते ही देखते बच्चे जवान हो गये। उनकी लडकी की शादी धूम धाम से हुई। अब के उसने बडे लडके को सरकारी नौकरी मे भरती करवा दिया और नौकरी लगे अभी जुम्मा-जुम्मा आठ दिन भी न हुए होगे कि उसकी शादी भी कर दी। कमाल है और वह कभी किसी काम में नही पिटा। हर जगह कामयाब। हर काम मे सफल, और उस दिन उसकी गोट पिट गई। पिटी भी तो अपने लडके के हाथो। है न कमाल पर कमाल। उस दिन मुंशीराम के रग-ढग कुछ और ही थे, गाव वाले हैरान थे कि आज बुल्ली को क्या हो गया।

क्षमा कीजिए, असली बात तो बताना मै भूल ही चला था, मुंशीराम को लोग उसके नाम से कम जानते थे, बुल्ली कह कर ही पुकारते थे। यदि किसी ने पूछ लिया भई कौन बुल्ली? तो कह दिया मुंशी-

बुली ।

इस बुल्ली नामकरण का इतिहास तो निश्चित काल, तिथि, मास, दिन, वार, तो बहुत खोजने पर भी नही मिल सका। हा, इतना जरूर पता लगा है कि बचपन मे जब यह नग धडग फिरा करता था तो बच्चे डर कर भाग जाते थे। उसके साथ कोई न खेलता, वह कुत्तो के छोट-छोटे पिल्लो के साथ खेला करता और उन्हे मुंह चिढाता, तग करता। काले कुत्ते से उसे बहुत चिढ थी। सफेद और भूरे रग के पिल्लो से विशेष लगावट। अब जब वह भी बडा होने लगा तो उसके साथ-साथ पिल्ले भी बढने लगे। वह मर्द बनता गया और वे पिल्लो से कुत्ते। आपस मे खूब छनती थी। कोई बडा पिल्ला उसी समय उसकी शरारत से तग आकर गुर्राता और धमकाता तो मुन्शीराम भी वैसी ही सूरत बना कर उसे डराता। उस समय यही प्रतीत होता जैसे काल और सफेद दो पिल्ले लड रहे हो। एक दिन मुशीराम के चाचा ने, क्योकि पिता तो उसके थे नही, उसे देखा तो झिडका, 'अबे सुअर, तू आदमी है कि कुत्ता। क्या बुल्ली की सी सूरत बना ली है। चल हट यहा से·· ··

वह दिन सो आज का दिन, मुँशीराम बडा हो चला, दम तो जवानो के से थे, पर रहा बुल्ली ही।

बुल्ली उस दिन, दिन के चढते ही उदास दिखायी दे रहा था, लोग सोच रहे थे किस की आई है? बुल्ली का काला रूप जब अपनी चमक पर आ जाता था तो लोग भयभीत हो जाते थे। आज सुबह से उसे अपनी दुकान से उठते नही देखा था किसी ने। दुकान भी क्या थी, बस बैठने भर के लिए बैठक जहाँ उसके मिलने-जुलने वाले आ बैठते थे, और फिर हुक्केबाजी और गप्पबाजी होती रहती थी।

आज मुशी ने पचम स्वर मे अपने लडके को आवाज भी न दी था वरना उसकी तीखी कडकती लम्बा आवाज, "मेरा हुक्का दे आओ दुल्ली)" जहा किसी को चौका देती थी, किसी को डरा देती थी, किसी को सजग

कर देती थी और कई उसे सुनकर खल कर हस भी देते थे। और यह नित्य का क्रम लोगो के जीवन मे रचपच गया था। आज वह आवाज न सुनकर हर कोई चिन्तित सा हो गया था। इस घटना पर अभी गली बाजार में टीका टिप्पणी हो रही थी कि बुल्ली तीर की तरह दुकान से निकला, उसके हाथ मे एक बडा-सा पत्थर था, वह बाजार मे से होता हुआ शायद घर की तरफ भागा जा रहा था और जोर-जोर से चिल्ला रहा था 'मै अपना सिर फोड लूगा, गाडी के नीचे सिर दे दूगा, अभी जाऊगा, अभी। बाहर बजने मे कुछ मिनट बाकी हैं। अभी गाडी आई नही है। मुझे कोई नही रोक सकता।" यही नही, इस तरह की और भी बहुत सी बाते बकता वह सहेलाराम की दुकान के सामने पहुचा, तो सहेलाराम ने उठ कर उसे पकड लिया।

"यह क्या पागलपन है? बुल्ली! होश मे आओ। धीरज से काम लो। इतने मे दो चार आदमी पास पडौस के और कुछ बच्चे भी आकर खडे हो गये। सहेलाराम का बुल्ली से खूब मेल था। एक दूसरे से मन की बात कह-सुन लिया करते थे। सहेलाराम बुल्ली के कष्ट का कारण अच्छी तरह जानता था। दूसरे भी थोडा बहुत समझते थे, फिर भी किसी को यह आशा न थी कि बात यहाँ तक बढ जायेगी।

सहेलाराम ने बुल्ली के हाथ का पत्थर उसने छीन लिया और उसे दुकान के अन्दर बिठा दिया। बाहर खडे कुछ बच्चे उसकी तरफ घूर-घूर कर देख रहे थे। एक बोला 'तुमने देखा चुन्नी, बुल्ली कैसे पत्थर लिए भागा जा रहा था कह रहा था, सिर फोड लूगा।"

'फोड चुके सिर" चुन्नी ने उत्तर दिया। "फोडना ही था तो दुकान से सिर फोड कर ही बाहर निकलता। गाडी के नीचे फिर देना था तो जाकर दे दिया होता। आज तो गाडी भी देर से आई थी। शायद इन का इन्तजार करती रही हो। यह तो पहुचे नही मरने के लिए। मरना आसान नही। यह बुल्ली है। किसी दिन वैसी ही मौत मरेगा।"

"कैसी ?"

"कुत्ते की सी। तुल्ली जो हुआ।"

बुल्ली के कान मे इस बात की झनक पडी तो वह उन बच्चो की ओर उसी तरह से मुह बना कर गुर्राया जैसे कुत्ते गुर्राते हो। लडके हस दिये, बुल्ली कुत्ते की तरह भौ भौ कर के भौकने लगा, इतने में दो चार कुत्ते भी वहा आ गए। लडके और कुत्ते, कुत्ते और बल्ली कुत्ते भौ-भौ करके उसे ही पुकार रहे थे। और लडके चिल्ला रहे थे, बुल्ली बुल्ली।"

मुंशीराम से अब रहा न गया, वह अपने आप में न था। उसने सहेलाराम की दुकान मे छलाग लगायी और लडको और कुत्तो के बीच आ खडा हुआ।

'हाँ मै बुल्ली हू। बुल्ली कुत्ता। तुम्हे काट खाऊगा। मै हल्का गया हूं। भाग जाओ नही तो काट खाऊगा।" लडके तो उसे चिढ़ाने में पहले ही सधे हुए थे, वह भी उन्हे कम न चिढाया करता था, वे इसे नित्य की स्वाभाविक बात ही समझ रहे थे। लडको ने मुह चिढाया और वह भौ-भौ करके उन के पीछे दौडा। उसके दिमाग में कुत्ते ही कुत्ते छा रहे थे। लडके, जो कुत्तो से भी बदतर थे, गये बीते, कुत्त जो उसे अपन समझते थे, लड़के जो उसे कुत्ता समझते थे और उसका अपना लडका था, जिसे उससे पाला पोसा, बडा किया, पढाया, लिखाया नौकर कराया, उसकी शादी की·····"वह भी मुझे क्या समझता है? अपने सम्बन्धी से जेवर उधार माग कर शादी में दिखाने के लिए ले गया, दो दिन के लिये, और यह नई नवेली दुल्हन को शहर ले गया, बीस तोले का मागे का हार बेचकर बीबी को छोटे-कड़े बनवा दिये और बाकी पैसों से सैर सपाटा, सिनेमा, तमाशा देखता रहा। कुत्ता कही का······।"

इतने में बुल्ली का वही नवविवाहित पुत्री बुल्नी सामने से दिखायी दिया। घर से पिता के लिए भोजन लिये आ रहा था, उसने कहा,

,अब छोडो भी लडको का पीछा, और आकर टुकडा खा लो।"

"टुकडा खा लू। तेरे हाथ से, तू मुझे क्या समझता है। यही न जो यह लडके समझते हैं। तूने मुझे लूट लिया, मेरी हेठी करा दी। कल की उम छोकरी के लिये, मुझे भिखारी बना दिया . "

"क्यो ख्वाहमख्वाह भौंक रहे हो, लोगो को तमाशा दिखा रहे हो? क्या लूट लिया मैंने तुम्हारा। तुमने भी तो दुनिया को कम नही लूटा।"

मुंशीराम के कानो में और कुछ तो नही आ सका, "क्यो भौंक रहे हो?" यही बात सुनकर वह तडप उठा। "तुम, तुम भी मुझे कुत्ता समझते हो? अपने बाप को, मैंने जिन्दगी भर किसी से मार नही खाई कोई मुझे ठग नही सका, सबको मात दी है, पर आज तेरे हाथो पिट गया हू। तू मुझे कुत्ता समझता है तू .. ..मै कुत्ता ही हू। कुत्ते ही अच्छे है, इन्सान कुत्तो से भी गये बीते हैं।"

यह कहता हुआ बुल्ली गाव से बाहर जोहड की ओर भागता चला गया। लडके तो नही गए क्योकि उनके माता-पिता ने डाट-डपट कर रोक लिया, गाव के कुत्ते जरूर उसके पीछे भाग रहे थे। काले, भूरे, सफेद कुत्ते। जोहड के किनारे जाकर बुल्ली बैठ गया और उसके आस-पास कुत्ते बैठ गये, अपनी लबान लपलपाते हुए, उसे भरी-भरी आखो से देख रहे थे। और तब से वर्षो तक बुल्ली वही जोहड के किनारे बैठा रहा कुत्तो के साथ कुत्तो का हमजोली, गाव वालो में से किसी ने उसकी सुध-सार न ली, बेटा बीबी को लेकर अपनी नौकरी पर चला गया। उसकी पत्नी जरूर दोनो वक्त उसके लिये और उसके कुत्तो के लिये खाना ले आती थी। बुल्ली उसे पहचानता तक न था, वह कुत्तो से कहता, 'बेटे वह तुम्हारी माँ आई है टुकडा लेकर खा लो।' और बुल्ली की पत्नी आखो मे आसू भरे उसकी ओर टुकर-टुकर देखती रहती और फिर घर को चली जाती। अन्य गावो से आने वाले राहगीर बुल्ली को पहुचा हुआ फकीर समझकर उसकी टहल-सेवा कर जाया करते थे, उससे वरदान पाने की आशा से, और बुल्ली अपने कुत्तो में ही मस्त रहता था।

ललित सहगल

सिगरेट और पेशो

छत पर एक कोने में बैठा पेशो जादू का एक खेल बना रहा था, उसके पास माचिस की एक खाली डिब्बी, माचिस की कुछ तीलियाँ, टेन नम्बर की दो सिगरेट और गोद की एक शीशी रखी थी।

पेशो ने एक सिगरेट के चार टुकड़े किये—एक बडा, दूसरा उससे छोटा तीसरा उससे भी छोटा और चौथा सबसे छोटा। चारो टुकड़ो को उसने माचिस मे गोद से जोड़ दिया।

"एक सिगरेट बच गई।" उसने गम्भीरता पूर्वक सोचा, 'इसका क्या किया जाए?"

वह सोच ही रहा था कि नौकर मोती गीले कपडे सुखाने के लिए छत पर आया। "क्या कर रहे हो, छोटे बाबू?" उसने पेशो के समीप आकर पूछा।

"मोती रे, इस बची हुई सिगरेट का क्या करे?" पेशो ने सिगरेट दिखाते हुए कहा।

"लाओ, मुझे दे दो, छोटे बाबू! मै पी लूगा।" मोती ने जैसे समस्या का हल बताते हुए कहा।

पेशो ने सिगरेट देदी। मोती ने सिगरेट जलाली। पेशो ने उसे खूब मजे से लम्बे लम्बे कश खीचते देखा।

"मोती, सिगरेट क्यो पीते है?"

"गम-गलत करने को पीते है, छोटे बाबू !"

"गलम गत करना क्या ?"

"औरो की बात नही जानता। अपने बारे में इतना कह सकता हूं कि जब बीबी जी किसी बात पर डॉट देती है, तब सिगरेट पीकर गम-गलत कर लेता हू।"

"अच्छाऽऽ, गलम-गलत ऐसा होता हे ?"

गलम-गलत नही, छोटे बाबू ! गम-गलत !

"तो अब मै भी गलम-गत करूँगा। कल करूँगा, फीऽर परसो को भी करूँगा, नरसो को भी करूँगा। और बतलाऊं—नरसो से भी नरसो करूँगा, उमसे भी नरसो करूँगा. ."

"वह क्यो ?' मोती ने बीच में ही पूछा।

"इससिए कि स्कूल मे मास्टर जी ने हिसाब के मवाल करने को दिये थे। सवाल हुए नही। मास्टर जी डॉटेगे—पीटेंगें। मुझे गलम-गत होगा। मास्टर जी कहेगे—कल कर लाना ! उस कल भी मुझसे नही होगे .."

'क्यो ?" मोती ने फिर टोका।

"इसलिए कि मै हिसाब मे कमजोर जो हू। मुझसे हिसाब के सवाल नही होते ." तभी पेशो की मुंडेर पर एक कौआ नजर आया और उसका ध्यान उस ओर चला गया।

'कौवा भाग ! भाग कौवा !" उसने तालियाँ बजाते हुए कहा। 'भगा दिया साले को !" उसने विजयोल्लास भरे स्वर ने मोती को सूचना दी।

"बाबू जी के सामने न कह देना साले-वाले ! हाँ, मारेंगे।"

"साला कहने मे क्यो मारते है, मोती रे ?"

"उत्तर ˘ नौकर ने जोर से सिगरेट का कश खीचा—स्वूऽऽऽ।"

"सिगरेट पीने मे मजा आता है, रे ?"

"हाँ, बहुत, पी के देख लो !"

"ला, दे !" पेशो ने हाथ बढाते हुए सिगरेट माँगी। मोती ने पहले तो देने से मना कर दिया, लेकिन पेशो के कई बार मांगने पर सिगरेट उसके हाथ मे दे ही दी।

"कैसे पीऊँ ?"

"सिगरेट को होंठो के बीच भींचकर अन्दर की तरफ साँस खींचो !"

पेशो ने नौकर के निर्देशानुसार सिगरेट होंठो के बीच भींचकर साँस खींचा। उसे जोर की खाँसी आई। इतने में माँ खडाऊँ बजाती छत पर आ पहुँची। पेशो को खाँसता हुआ देखकर बोली, "खास क्यो रहा है रे ?"

वह चुप रहा।

"क्यों रे, बोलता क्यो नही ?" माँ ने फिर पूछा।

"मोती ने कहा था, माँ, कि सिगरेट पीने मे बड़ा मजा आता है।" उसने अकृत्रिम रूप से कहा।

"क्यो रे मोती, पेशो ठीक कह रहा है ?" माँ ने पूछा।

"जी ! लेकिन..."

"लेकिन-वकिन क्या ? बच्चो को इस तरह की बाते सिखायी जाती है। अब आगे से ऐसा न करियो ! जा जाकर बर्तन साफ कर !"

मोती चला गया।

"इधर आ, पेशो ! आगे से कभी सिगरेट छुई भी, तो बाबू जी से कह कर खाल उधड़वा दूगी। और उस दिन जो तूने चीनी की प्लेट तोड़ी थी न उसकी भी बात कह दूगी..."

"क्या बात है पेशो की माँ ?" पेशो के पिता ने छत पर आते हुए पूछा।

"कुछ भी नही," माँ ने कहा। "जरा बन्दर आ गए थे" और वह पेशो का हाथ पकडकर नीचे चल दी।

तब पेशो सात साल का था।

चार साल बाद ..

विजय ने सिगरेट का फकाफक धुआँ उडाते हुए पेशो से कहा, "सिगरेट पीने से छोटा आदमी भी बडा हो जाता है।"

"कैसे?" पेशो ने विजय से, जो उम्र मे उससे एक साल छोटा था, पूछा।

"अरे ! इतना भी नही समझते, मास्टर ?"

"नही।"

'दिलीप कुमार का नाम सुना है, बेटा ?"

"हाँ।"

"वह खूब सिगरेट पीता है। सुना है, सिगरेटो में सबसे बढिया सिगरेट पीता है। इसीलिए तो वह इतना बडा एक्टर है, जनाब !"

"अच्छा !" पेशो ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, और फिल्मी-एक्ट्रसे भी पीती है।"

"नही।" उसने विरोध करते हुए कहा, 'कही औरतें भी सिगरेट पीती है ?"

'वाह, मेरी जान ! तुम्हे इतना भी नही मालूम ? नरगिस का नाम सुना है ? अरे भई, नरगिस ! बडी बढिया एक्ट्रेस है, उस्ताद ! क्या पूछो ? वह ऽऽ, अरे उस फिल्म का नाम याद नही आ रहा। खैर, छोडो भी ! लेकिन वह पीती है, मैंने उसे कई फिल्मो मे देखा है। खैर, फिल्म देखने चलोगे, छमिया ?"

"नही माता जी कहती हैं—फिल्म देखना बुरी बात है,"

"अरे' वाहरे, माताजी क बटे !" विजय ने पेशो का चोटी खीचते

, र ।

"कहा जा रहा है, यार ? पेशो ने उसका हाथ पकड़ते हुए पूछा,

।

"बच्चो से क्या बात करू ?" और उसने चुटकी से सिगरेट की राख एक तरफ झाडी।

"मैं बच्चा नही हूं।"

"बच्चा नही है तो और क्या है ? न फिल्म देखता है, न सिगरेट पीता है, बच्चा तो है ही।"

"अच्छा, क्या बडा होने के लिए सिगरेट पीना जरूरी है ?"

"बिल्कुल ! उसी तरह, जिस तरह इम्तहान में पास होने के लिए पढना जरूरी है।"

'सिगरेट पीने से खाँसी तो नही आती ?"

"खासी-वासी कुछ नही आती, पीएगा ?" और पेशो ने हाथ बढाकर सिगरेट ले ली।

"बडा होने के लिए बडा कश खीचो ! खोखी आए तो जोरो से खासो ! फिल्मो में महल, इमारतो मे ताजमहल और सिगरेटो मे लालमहल, लालमहल सिगरेट ! कम पैसो मे ज्यादा मजा, लालमहल सिगरेट पीयो !"

घर पहुंचकर जैसे ही पेशो कुल्लियाँ करने को गुसलखाने की तरफ जाने लगा, तभी माँ गुसलखाने से निकली, पेशो के पास से निकलते हुए बोली—"तेरे मुँह से बू आ रही है, सिगरेट पी के आया है ?"

"नही तो, "पेशो ने अपना मुंह दूसरी तरफ करते हुए कहा।"

'नही तो क्या ? साफ बू आ रही है, झूठ मत बोल ! तू जानता है—मुझे झूठ बोलना कितना बुरा लगता है।" वह गुमसुम-सा खडा रहा। "बता ना !" माँ ने फिर पूछा।

"विजय ने...कहा था...कि सिगरेट पीने से आदमी ..जल्दी बडा हो जाता है," वह लगभग रोते-रोते बोला।

"बडे होते हैं बड़े काम करने से, सिगरेट पीने से कही बडा आदमी हुआ जाता है ? चल, आगे से न पीयो, वरना बाबूजी से कहकर खाल उधेडवा दूगी..."अरी, सुनती हो, पेशो की माँ ?" पेशो के पिता दरवाजे से घुसते हुए बोले,

"अरी, सुनती हो ? अभी मुझे एक नम्बर वाले वकील साहब मिले

थे, कह रहे थे—आपका लड़का सिगरेट पीने लगा है, मेरा तो शर्म से सिर झुक गया," और दरवाजे पर टगी छड़ी उठाकर लाते हुए बोले, "कहाँ है, पेशो ? साले की खाल न उधेड़ दी तो बात नही।"

मा, समझाते बोली, "वकील साहब को तो इधर-उधर की कुछ कहने मे मजा आता है, हमारा पेशो ऐशो ऐसा नही है।"

"वैसे कहा है, पेशो ?" पिता ने फिर पूछा,

"अन्दर कमरे मे 'रामरक्षा' पढ रहा है,

पेशो के पिता कमरे में घुसते ही जोर से गरजे," क्यो बे, तू सिगरेट पीने लगा है ? अभी एक नम्बर वाले वकील साहब कह रहे थे।"

"न· ही·· बाबू जी !"

" तो वकील साहब ऐसे ही झूठ बोल रहे थे ?"

वह चुप रहा।

"क्या यह 'रामरक्षा' अभी जबानी याद नही हुई ?"

"न···ही·· बा· !"

'यह है ब्राह्मण की सन्तान ! 'रामरक्षा' तक जबानी याद नही है।" और गुस्से मे आकर उन्होने पेशो के गालो पर दो तमाचे जड दिए।

"याद कर ! अभी थोडी देर मे आकर सुनूँगा," यह कहते हुए वह चले गए,

और 'रामारक्षा' पढते हुए भी पेशो का मन विजय और उसकी बातो की तरफ लगा हुआ था,

× × ×

फिर पाँच साल बाद...

"पेशो ! पेशो ! यह क्या है ? " पेशो के पिता ने उसके उतारे हुए कोट की जब मे सिगरेट का खाली पैकेट निकालते हुए कहा,

"जी...जी..."

'जी, जी, क्या लगा रखी है ! तूने सिगरेट पीना नही छोडा,"

"मैने सिगरेट नही पी, वह. .मेरा कोट विजय के पास था...शायद

उसने रख दिया हो..." वह अटक-अटक कर और डरते हुए बोला,

"उस अवारा के साथ रहे और सिगरेट न पीए ! असम्भव !"

"नहीं, बाबू जी ! मैं सिगरेट नही पीता, मैं सच कहता हूँ," वह बोला,

"झूठ !" और कोने मे से छडी उठा कर लाते हुए उन्होने एक छडी पेशो के मारी, "झूठ बकता है !" और दूसरी छडी मारी, "तेरे खान्दान में कोई सिगरेट नही पीता, तेरा बाप नहीं पीता, तेरा तेरा ताया नही पीता, तेरा बाबा नही पीता, तेरा बाप तो प्याज तक नही खाता, और तू सिगरेट पीता है, तेरी अक्ल को क्या हो गया है पेशो ?

वह कुछ बोला नहीं।

"हूँ...तेरी अकल ऐसी ठीक नही होगी, मैं अभी कर देता हूँ—" और यह कह कर उन्होने पेशो के तडातड छडी जमानी शुरू कर दी, और हर मर्तबा हर छडी मारने के संग वह यही कहते जाते, "बोल, सिगरेट पीना छोडेगा या नही ! सिगरेट पीना छोडेगा या नही ! बोल ! बोल !"

"मैं नही पीता, बाबू जी ! मैं सिगरेट नहीं पीता हूँ," पेशो ने कहा,

"झूठ ! झूठ !" और उन्होंने फिर तडातड़ छडी जमानी शुरू कर दी,

और मा ने पेशो को आकर बचा लिया।

"क्यो, क्या बात है, डार्लिंग ! यह चेहरा लटका हुआ क्यो है ?" विजय ने पेशो के कन्धे झिझोड़ते हुए कहा,

"कुछ नहीं,"

"कुछ क्यो नहीं ? क्या मार पड़ी है, चांकलेट ?"

"नहीं,"

"तो 'मूड' खराब है ? आओ, फिल्म देखकर 'मूड' ठीक करो !

हमारे रास निर्मला भी चलेगी..."

"निर्मला कौन ?"

"अरे वही, उर्मिला की छोटी बहिन वही, जिसने तुमसे कालिज में किताब माँगी थी और तुम किताब देने की जगह झेंपकर भाग गए थे अरे, खूब गुजरेगी जब मिल बैठेंगे दीवाने दो . दो नही चार, क्यो ?

"नही, मैं न जा सकूगा, मेरे पास पैसे नही है।" पेशो ने अपनी आसमर्थता बताते हुए कहा।—

"अरे पैसो की भी क्या फिक्र की, बुलबुल ? अभी तो मां बदौलत जिन्दा है, चलो !...

"नही, मै न जा सकूगा।"

"तुम्हारी मर्जी, हम तो चले, गुडबाई, डार्लिग !"

विजय के जाने के बाद पेशो निरूद्देश्य बाजार मे घूमने लगा, उसने जेब में हाथ डालकर महसूस किया कि उसके पास एक इकन्नी है, उसने इकन्नी जेब में से निकाल ली और फिर देर तक इकन्नी को हथेली पर रखे देखता रहा।

"एक सिगरेट" उसने पनवाडी की दुकान पर पहुंचकर कहा।

सिगरेट जलाते हुए उसने एक नम्बर वाले वकील साहब को पन-वाडी की दुकान की तरफ आते हुए देखा, वह डरा नही, उसने सिगरेट भी नही फेंकी।

"कहो, कैसे हो ?" वकील साहब ने पेशो के समीप आकर जान-बूझ कर पूछा।

"जी, बडे मजे में हूँ" और उसने सिगरेट के धुए का एक बडा-सा बादल छोड़ा।

वनाथ भटेले

दूर के ढोल

मृदुल कुमार जिस दिन से राज्य विधान सभा का सदस्य चुना गया, ठीक उसी दिन से उसने रोज की रोज डा री भरनी शुरू कर दी। राजनीतिक जीवन में किसी चीज क ठिकाना तो है नहीं, यह ख्याल दूसरे विधान सभाइयों की तरह मृदुल का भी था। इसीलि वह सोचता था कि 'अवधि' समाप्त होने के बाद इस डायरी को 'विधान सभाई की डायरी' के नाम से प्रकाशित कर दूगा। विधान सभा के सदस्य की जिन्दगी जाने कैसी होती होगी, यह ब त देश की जनत को ज ननी ही चाहिए। मृदुल सोचता था कि किताब इतनी बिकगी, कि उसकी रायल्टी से दो-चार साल आराम से कट सके। मृदुल की कहानी अभी खतम नहीं हुई थी, क्योंकि 'अवधि' खतम न ी हुई थी। एक-एक दिन की डायरी के लिए सौ-सौ कहानियां नाचती आती थी। मृदुल किसे-किसे लिखे, यह समस्या भी बेचारे को परेशान किए हुई थी।

मृदुल की विधान सभाई के नाते जो जिन्दगी शुरू हुई, वह किसी भी उपन्यास से कम दिलचस्प नहीं थी। न सिर्फ दिलचस्पी ही बल्कि विचारपूर्ण विरोधाभासों का भी भण्डार इस जिन्दगी में उसने पाया।

एक स्वतंत्र उम्मीदवार के नाते उसने असेम्बली की मेम्बरी का पर्चा भरा था और गरीबी के नाम पर वोटों की अपील की थी। ऐसे लोगों को उसने अपने चुनाव-आन्दोलन की धुरी बनाया, जो सामान्यत.

में उपेक्षित और मशकूक चालचलन वाले समझे जाते थे। इन में सभी गरीब लोग थे, जो रोज कुआ खोदते और प्यासे रह जाते थे। इन लोगो को मौका नही था कि वे किसी के पास उठ बैठ सकते। हलाकि चार भलो मे बैठने की हौस उन्हे बहुत थी। इन लोगो की सस्कृति मे झूठ बोलने और बेसिर-पैर की गन्दी बाते करने की रोक नही थी।

वही वजह थी कि साफ कपडे पहन कर दूकानो पर पान खाने वाले सभ्य लोगो की राय मे वे गन्दे लोग कौवे, कुत्ते और बन्दर से ज्यादा वजनदार नही थे।

मृदुल ने चेतना की आँखो से इन गन्दे लोगो मे भी एक सवेदन देखा और अपने चुनाव-लेक्चरो मे उसे टकोर दिया। मृदुल ने इन लोगो को उनकी गन्दगी दिखा दी। इनकी तबियत पर ऐसा नशा जारी कर दिया, जिससे उनकी आखे मुँद गई और दृष्टि अन्तर्मुखी हो गई। उन गरीबो को अपनी अन्दरूनी गहराइयो मे एक भरी सभा दिखाई दी, जिसमे उनके सभी परिचित चेहरे कुर्सियो पर, तख्तो पर या फर्श गलीचो पर डटे बैठे थे। बेहिसाब सजावट और बेशुमार वैभव सभा मे बिखर रहा था। शक्ति के सम्मानित दरबार में उन घिनौने लोगो ने देखा कि वे कही नही हे। उन्होने आख फाड फाड कर निहार-घूरा, मगर वे वहा नही थे, नही थे। सामूहिक रूप से उन सब की आखो मे गैरत का मोती उग आया। उनकी आखे खुल गई। वे मृदुल पर कुरबान जाने को दीवाने हो गए, जिसने उन्हे उनसे मिला दिया।

फिर तो वह हवा चली कि दिए से दिया जलने लगा। एक एक घर छूटा और चार-चार के कान घूम आया। चार भगे, सोलह जगे। सोलह ने चौसठ चाटे और चौसठ ने चार सौ चालीस। हद हो गई।

निर्वाचन के दिन ऐसी गगा बही कि जो डूबे, सो पार भए। नदी-नाले और मोरी-परनाले सभी उसमे आ मिले, गगोदक हुए। गणना हुई तो मृदुल के सभी प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवारो की जमानते अमानत में

रह गई।

गजरे गिरे। जयनाद सीमान्तों तक तैरता चला गया। दावतें हुईं, अदावतें हुईं।

मृदुल नया-नया विधान भवन में पहुंचा तो खुदा की शान देखी। कुएं से छोर-हीन समन्दर में आ गया। राज्यपाल की ओर से दी गई दावतों में, पहले-पहले सैशन में मृदुल को आकाश के तारे तलवों से कुचलने को मिले। चार-पांच महीनों में ही उसे आकाश से उतरना पड़ा लेकिन कोई खास एहसास नहीं हुआ। उसकी 'फीलिंग्स' में भी कोई नया 'चेंज' हुआ हो, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। पगार की दीवारों और भत्तों की छतों से बने शीशमहल में वह अटक गया। नीचे से किसी कमबख्त ने आग दे दी कि मृदुल खजूर में लटक गया। मृदुल ने मिनिस्टरों को सगस ा ो कारा देखा और खुद को दांतों से सुपारी व जीभ से 'क्रिटीसिज्म' कतरने देखा। उसकी आंखों में अब तमन्नाएं उठे और गिर-गिर पड़े। गोते-भत्ते खाते डूबते-उतरते चुनाव-वर्ष गांठ बीत गई।

चुनाव-वर्षगांठ के दिन उसमें राजरानी के 'कैपिटल' रेस्तरां में चार दीगर दिलजलों के साथ दिन भर 'काफी' पी। रात डायरी में उसने सरकार की निस्सारता और खर्चीली बोझीली शासन मशीन में नए सुधारों पर कुछ सुझाव नोट किये।

दूसरे दिन विधान सभा में उसे सिंचाई की नई योजनाओं से सम्बन्धित एक सरकारी प्रस्ताव के समय बोलना था। सदन में बोलने का दिन विधान सभाई के लिए उतना ही गौरवपूर्ण होता है जैसे कवि का रेडियो फाड्रेकट वाला दिन। बड़े फजर से नहा-धो कर वक्त से कुछ पहले ही विधान भवन के 'रिफ्रेशमेंट रूम' में जा बैठा। वहां तो जो आते, सो बेताज बादशाह ही आते। मन्त्री लोग ठीक कुछ मिनट पहले आए, दो-चार को देख-बोल कर उपकृत किया, और बेंचों पर चले गए।

सदन में पार्टियां होती है, आदमी नही होते। पार्टियो के पिंजड़े से बाहर इक्का-दुक्का पक्षी जब पहुच जाता है, तो सदन में उनकी दशा वैसी ही होती है जैसी चार साल पिंजड़े मे रह कर कोई तोता उड जाए और आजाद जंगली तोतो मे जा मिले। उसके पहुचते ही पूरा झुण्ड उड जाएगा। कभी-कभी तो ऐसे तोते को पूरा झुण्ड मार-खा जाता है।

नम्बर आने पर मृदुल बोलने खड़ा हुआ। आज उसका बोलने का 'टोन' तिरछा और कलाम सख्त थे। उसे आज अपना भूखा-वीरान चुनाव क्षेत्र खूब याद आया था। उसने सरकार को सुझाव दिया—"सिंचाई के लिए विकास योजनाओ के अन्तर्गत देहातो मे जो नल कूप खोदे गए हैं, उनसे किसान को पानी बिना मूल्य दिया जाए। अकेला राजस्व-कर ही किसान से लिया जाना चाहिए। तीन पॉच रुपए फी घण्टे के भाव पर किसान के खेत को पानी देना जायज नही है।"

पूरे सदन मे हसी और बलबलाहट का ऐसा वातावरण छा गया जैसे मृदुल नें कोई उलट बासी कह दी हो। वह सभल नही पाया कि एक मंत्री की बगल से आवाज आई—'हर्षवर्धन का राज्य नही है।"

फिर एक बुलन्द ठहाका पडा। तेजी से मृदुल ने जवाब दिया—हर्षवर्धन का नही, पानी का पैसा खाने वाला राज्य है।"

यह तीर मृदुल को भवन मे जमाता जा रहा था कि विरोधी दल के किसी माननीय सदस्य ने आवाज कस दी—"मृदुल भाई किस की कमाई खाते है ?"

फिर ठहाका गूँज उठा। मृदुल पर पानी पड गया। उसने आग्नेय होकर विरोधी बेंचो की ओर देखा।

अध्यक्ष ने इतना काफी समझ कर आर्डर-आर्डर की लगाम खींची। मृदुल को बोलने का अवसर दिया गया। अब की वह बोला क्या, बस 'फायर' उगला।

उसके बाद ही सरकारी बेंचो की ओर से स्वयं मुख्य मंत्री उठे और जवाब देने लगे। मृदुल की पौन घण्टे की कुश्ती का एक जुमले में

उन्होंने यही जवाब दिया कि उनकी आकाक्षा पवित्र है, परन्तु वे अतीत की कब्र मे रहते है। इस पर सदन मे एक निर्णय अट्टहास ने पुन जन्म लेकर सदन के नेता को सम्मानित किया।

उस दिन मृदुल किसी से नहीं मिला। शाम की 'ह्वेवी टी' लेकर अपने गाव चला गया। चुनाव इलाके के नागरिको की रोजमर्रा की जिन्दगी मे हिस्सा लेने का लम्बा कार्यक्रम उसने तैयार कर लिया था। रात की गाडी से चल कर प्रात होते होते वह घर पहुच गया। दिन भर लोग आते रहे। किसी ने थाने मे सिफारिश चाही, किसी ने जज के यहा मुकदमा ठीक करा देने की ख्वाहिश जाहिर की, एक ने दो रुपए मागा लिए। शाम को 'हाकिम-निन्दा दरबार' मे स्थानीय पुलिस दरोगा वगैरा का बहुत वार, बहु-भाति बखान हुआ। मृदुल दरोगा पर आग-बबूला हो गया और पुलिस के खिलाफ अखबारो मे वक्तव्य जारी कर दिया गया।

अब तो जिले भर की पुलिस फोर्स उसकी दुश्मन, एस० पी० लोहू पिए बैठा। गुप्त रिपोर्टों मे जर्ज किया जाने लगा कि श्रीयुत मृदुल एम० एल० ए० का सम्बन्ध असमाजिक तत्त्वो मे है।

एक दिन शाम को मृदुल कोफ्त लिए बैठा था कि मोहनलाल आए और बोले—'चचा, तुम्हारे इकबाल को क्या करें? मेरा घर नहीं बसा और ये तीस बरस की उमर होगई। तुम्हारी दया दृष्टि हो जाए तो मेरे बाप का वश डूबने से बच जाए।"

"मेरी कृपा से तेरी शादी कैसी होगी?" मृदुल ने चकित हो कर पूछा। मोहनलाल कुछ और इरादे लाए थे। उन्हो ने मृदुल को एम० एल० ए० बनाया था। लिहाजा पक्के पाए पर थे।

बोले—'वादा करो तो कहूं। मृदुल ने अपने को झुझलाने से बचाते हुए पूछा—"अरे, कहो भी। बिना बताए क्या वादा कर दूं?"

वह बोले—'तो रहने दो। एक दिन वोट तुम ने मांगा था, मैंने दिया। मैं कहूं, तुम मना करदो, तो दिल टूट जाएगा।" मृदुल खुल

गया—"कोरे कागज पर दस्तखत करा रहे हो तुम तो।"
मोहनलाल ठहक से बोला—"भरम तहा खोलना चाहिए जहा खाली न जाए।"

मृदुल मारा गया। कानून के हरूफो मे लिपट कर उस गन्दे और असह्य इन्सान की कोई खिदमत नही की जा सकती, जिसने उसे चुना था। इसीलिए वह राजधानी से भाग आया। उसने अनुभव किया था कि राजधानी का 'लोक' उसका नही है। यहा आ कर इलाके के गन्दे-गरीब भी उससे नाखुश-नामुराद जाते है तो परलोक गया ही था, यह लोक भी गया।

उसने मोहनलाल से 'हा' कर दी। उन्होने 'त्रिवाचा' कहला ली तब बताया कि अमुक गाव से अमुक की लडकी को कार मे बिठा लाना है। लडकी के मा-बाप मोहनलाल के कुए में लडकी को गिराना नही चाहते थे। मोहनलाल का दावा था कि लडकी उसी से शादी करने को तैयार बैठी है।

मृदुल ने तै कर लिया था कि शहर के आर्य समाज मन्दिर मे या मैजिस्ट्रेट के सामने विवाह पक्का करा दिया जायगा। ज्यादा 'डिटेल' उसने मोहनलाल से नही पूछी। उसे भय था कि कही वह यह न समझे कि मृदुल कन्नी काट रहा है। उसे भूला नही था कि मोहनलाल ने उसके चुनाव में एक सौ एक रुपया चन्दा दिया था।

अगले दिन मोहनलाल कार ले आया। मुहल्ले के पाच-छ मशकूक चाल-चलन वाले दोस्त भी पीछे की सीटो पर बैठे थे।

मृदुल को कार में उन लोगो के साथ बैठते न जाने कैसा सकोच हुआ। उसके साथ वाली सीट पर मोहनलाल था। रास्ते भर आपस में बाते हुई, उनमे मृदुल ने निष्कर्ष निकाला कि ये लोग जो काम करने जा रहे हैं, उसे कानून की भाषा में 'लडकी भगाना कहेगे। इस नजर से उसने अपने को जब देखा तो बिल्कुल नई परिस्थितियो मे पाया। उसे गहरी फुरफुरी हो आई। मगर चुप बैठे चलने के अतिरिक्त चारा

क्या था।

जिस गाव मे लडकी आनी थी, वहा पहुच कर कार रोक दी गई। सब लोग उतर गए लेकिन मृदुल आड मे ही बैठा रहा।

एक आदमी गाव मे हवा-रवा लेने चला गया। दोपहर का वक्त था। भरे-भरे बादल कई ओर से हुकारने आ रहे थे। हवा बन्द थी और पसीने की धारे चल रही थी। सडक पर गाडी खडी थी और मृदुल गुमसुम बना बैठा था। ऐसा लगता था जैसे उसकी समस्त इन्द्रियोमे से सिर्फ आखे ही ठीक काम करती है, शेष सब 'जाम' है।

एकाएक सामने से एक मोटर-ठेला आया और कार के पास रुक गया। ताब-फाड कर के आठ कान्स्टेबिल कूदे और कार-सवार सब घर लिए गए। थानेदार ठेले की अगली सीट पर से ही बोला—"बाध लो हरामजादो को; लडकी उडाने आए थे।"

मोहनलाल चिल्लाया—"हमारे साथ लाट साहब की कोन्सिल के मेम्बर साहब बडे है।"

दरोगा वही से बोला—"ले चलो सब को थाने, बकवास सुनने की फुर्सत नही हैं।"

और शाम जब हुई तो दरोगा सदर से लौट आया था। एम० एल० ए० साहब किस परिस्थितियो मे पाए गए थे, यह बताने के लिए वह सुपरिन्टेडेन्ट से मिला था। कप्तान साहब और जिलाधीश ने ऊपर से वायरलैस द्वारा इजाजत ले ली कि मृदुलकुमार के साथ गैरमामूली बर्ताव न हो कर वैसा ही हो, जैसा इस जुर्म मे फसे दूसरे लोगो के साथ होता है। राजधानी के रजिस्टर मे यह देख लिया गया था कि सदन में मृदुलकुमार किधर बठते है? सदन मे दिए गए उनके वक्तव्य भी एक बार फिर देख लिए गए थे और तब जिले के हाकिमो को उचित आदेश दे दिया गया था। कानून की निगाह मे राजा और रक बराबर है। लिहाजा मृदुलकुमार ने रात हवालात मे गुजारी। थानेदार,—"कोई तकलीफ तो नही है सरकार" कहने गया, तो उसने भरे हुए

लहजे मे सजीदगी से यह भी कहा था—"प्रभु, नौकरी न कराए। इसमे आदमी मजबूर हो जाता है। हुजूर, मुझे सिर्फ नौकर समझे, कुछ अन्यथा न समझे।" मृदुल कुछ भी न बोला। आख मूद कर सर्प डसा-सा वह एक ओर कम्बल बिछा कर लेट गया। उसकी पलके मुंदी थी लेकिन दिमाग पूरी तरह जाग रहा था। उसकी बन्द आखो मे कल सवेरे आने वाले अखबारो की सुर्खिया चुभ रही थी जिनसे उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व छलनी-छलनी हो जायगा।

कौन अलग से मोहनलाल की सुन रहे थे—"चोट खा गए! हम बाबूजी की लाटसाहबी मे मारे गए। अगर जरा भी मालूम हो जाता कि इन्हे कोई हाकिम गली का कुत्ता तक नही समझता, तो हम कतई इस काम पर कदम न देते।" आख और कान दोनो को जब समझदारी के पुल पर मृदुल ने इकट्ठा देखा तो उसे आज तक अपना सम्पूर्ण किया-धरा फिजूल मालूम हुआ। एम० एल ए० होने के पहले उसने जो कल्पना-चित्र तैयार किया था वैभव की जो शब्दहीन गूज विधान भवन के गुम्बज में वह सुन रहा था, इसानियत की पूजा-सेवा का जो सगीत उसके मन में बजता था—आज सब झूठा निकला। वह दूर का ढोल था, जो पास आने पर 'ढब-ढब' करता है। मृदुल आज हवालात मे भी डायरी लिखना चाहता है, मगर कागज नही है।

स्वदेश कुमार

ममता

जमे हुए दही मे जैसे गुलाबी रंग, झलक मार रहा हो—ऐसा था नीरजा का रंग,

बडी-बडी आखे जैसे नीले जल की झील हो, शरीर की बनाट ऐसी कि ससार का बडे से बडा शिल्पी भी उसे देख कर हार मान जाए, जब वह हंसती तो सितार की तरबे एक-एक करके झनझना उठती, ऐसी नीरजा को पा कर कौन अपने को बडभागी न मानता ? उसका पति रमेश तो जैसे निहाल हो गया, उसका रोम-रोम नीरजा पर न्योछावर था, नारी को जिस वस्तु की भी चाह हो सकती है, वह रमेश ने नीरजा के चरणो पर ला रखी,

पति के इस अपार प्रेम को नीरजा बडे जतन से हृदय में छिपाकर रखती, वही ऐसा न हो कि कोई उसे छीन ले,

एक दिन रमेश घर में नही था, नीरजा दुमंजिले पर खडी उसकी राह देख रही थी, सडक पर लोग अपनी धुन मे इधर-उधर चले जा रहे थे, चार पाच छोटे छोटे लडके बासुरी और ढोल बजाते हुए उधर आ निकले, उन के साथ एक आदमी भी था, नीरजा का ध्यान उधर ही जम गया, लडके हर घर के सामने खडे हो कर बैंड बजाते वहाँ से कुछ पा लेने या फिर दुत्कारे जाने के बाद आगे बढ जाते, थोडी देर बाद वे नीरजा के घर आगे आ कर खडे होगए, नीरजा उन्हे देखती

रही और वे बैंड पर धुन बजाते रहे।

धुन जब समाप्त हो गई तो एक बच्चे ने ऊपर की तरफ देख कर नीरजा से गिडगिडाते हुए कहा।

"माँ, अनाथ बच्चो को कुछ मिल जाए,"

बच्चे की उमर पाँच साल की होगी, भोला मुख, आँखो मे याचना, नन्हे हाथ नारजा की ओर उठे हुए, नीरजा ने एक बार उस की ओर देखा और फिर देखती ही रही, कितना भोला—जैसे मासूमियत ने उसे अपने हाथो से गढा हो,

"माँ, अनाथ बच्चो पर दया करो," वही रटा रटाया वाक्य और आखो में याचना,

अनायास ही नीरजा के पैर उठे, सीढियो पर उतर कर कमरे के फरश, को तैर कर पार कर गए,और बाहर के बरामदे मे जाकर रुक गए, हाथ पसारे बच्चे पर दृष्टि गड गई।

"कुछ दया हो जाए, माताजी।"

नीरजा चौंक पडी,

"कौन है ये बच्चे ?" नीरजा ने साथ वाले आदमी से पूछा।

"अनाथ है, माताजी, इसी शहर के अनाथालय मे पलते हैं।"

"इनके माँ-बाप नही हैं ?" नीरजा न पूछा।

"अनाथो के माँ-बाप नही होते, माताजी।"

"क्या मर गए ?"

"पता नही मर गए या जीवित ही कही मुंह छिपाए होगे, कम से कम इन बच्चो को पता नही इनके माँ-बाप कौन है।"

नीरजा ने और कुछ पूछना उचित नही समझा। दस रुपए का नोट उस बच्चे के हाथ मे पकडा दिया। नीरजा की आखो मे दुलार था। बच्चे की आँखो मे कुछ नही। उसने नोट अपने संरक्षक को दे दिया, नोट-लेते हुए वह बोला,-'माताजी, इन अनाथो को आप ही का सहारा है।"

नीरजा ने बच्चे की तरफ देखते हुए कहा,—"फिर कभी इस तरफ आना हो, तो यहा जरूर आना ।"

"जरूर, जरूर" सरक्षक न अत्यन्त कृतज्ञता का भाव दर्शाते हुए कहा, फिर बच्चो से बोला—"माताजी को नमस्ते करो ।"

बच्चो ने आज्ञाकारी पुतलो की भाति हाथ जोड दिए, फिर बैड बजाते हुए आगे चल दिए । नीरजा उन्हे देखती रही, फिर अन्दर चली गई ।

शाम को जब रमेश घर आया तो नीरजा को अन्यमनस्क-सा कमरे में बैठा पाया ।

"कुछ उदास दिखाई देती हो ?" उसने नीरजा के सामने खडे हो कर कहा ।

'नही तो" नीरजा जैसे चौकते हुए बोली उठ और खडी हुई । 'आप की प्रतीक्षा कर रही थी, आज देर से आए हो ।"

'देर ? आज तो मै जल्दी ही चला आया । किन विचारों मे खोई हुई थी ?"

"आपके विचारो मे" नीरजा ने सहज मुस्कान के साथ रमेश की ओर देखा ।

रमेश लुट गया । बाहुपाश,...चुम्बन...अतृप्ति...चुम्बन । नीरजा की आंखें मुंदी-मुंदी मुंदी । आंखो मे उस भोले अनाथ बच्चे का चित्र—नीरजा के विचारो का केन्द्रबिंदु । पति की समीपता का कुछ ज्ञान नही ।

आकाश के काले आंचल मे तारे चमके, धरती की गोदी में फूल मुसकाए । काला आंचल तो नीरजा, चमकीले तारे वह अनाथ बच्चा; धरती की गोदी तो नीराज, मुसकराते फूल वह बच्चा । उसे बच्चे के प्रति नीरजा की दया ममता वेगवती नदी के समान बढती गई । वह उसी की याद में खोई रहती । बिना मां-बाप का बच्चा कौन उसके लिए खिलौने लाता होता ? कौन उसे दुलारता होता ? किसकी गोदी में वह 'मां, मां' कह कर चढ़ता होगा ? कौन उसे थपकियां देकर सुलाता

होगा ? नीरजा का हृदय द्रवित हो उठता आँखो से आँसू बहने लगते।

अपने आवेग को नीरजा बहुत छिपाती, पर रमेश को पता चल ही गया। वह बाहर जाते-जाते रुक जाता, सोते-सोते जाग उठता और नीरजा का मुख अपने हाथो मे साध कर ऊपर उठाता, उसकी सजल आँखो मे अपनी दृष्टि तैराते हुए वहाँ कुछ खोजता और पूछता—

"यह तुम्हे दिन पर दिन क्या होता जा रहा है, नीरजा ?"

नीरजा उत्तर न देती तो रमेश उसके प्रति अपने व्यवहार, अपने प्यार मे कोई कमी ढूंढने का प्रयत्न करता। जब किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँचता, तो फिर एक बार नीरजा की आँखो मे डुबकी लगाने की कोशिश करता। लेकिन तब तक नीरजा की आँखो का जल सूख चुका होता, और उसका मुख ऐसा लगता जैसे कोई मुरझाया हुआ फूल मुसकराने का प्रयत्न कर रहा हो।

यह देख कर रमेश को बहुत ढाढस बँधता—जैसे चुराई हुई सम्पत्ति भागते हुए चोर के हाथो से छूट कर रमेश को वापस मिल गई हो।

लेकिन सम्पत्ति चोरी होने और वापस मिल जाने का यह खेल जब प्रायः नित्य ही होने लगा, तो रमेश ने निश्चय किया कि चोर को पकड़ कर सजा दे।

और एक दिन रमेश जब बाहर से घर आ रहा था तो दूर से ही उसने देखा कि उसके घर के सामने चार-पाँच बच्चे बैंड बजा रहे है, और नीरजा सामने खडी है। फिर बैंड बद हो गया और नीरजा ने एक बच्चे के हाथ में एक नोट पकडा दिया। बच्चे आगे बढ गए। उसके पास से गुजरे तो रमेश ने उस बच्चे पर एक उडती-सी नजर डाली, तो दूसरे ही क्षण उसी पर जम गई। कितना भोला, कितना प्यारा बच्चा है !

रमेश घर में आया। देखा नीरजा बहुत प्रसन्न है। उसकी प्रसन्नता रमेश के मन पर भी छा गई। लेकिन उसने उस समय नीरजा से कुछ नही कहा।

सूरज ढल गया और पूनम का चाँद चमक उठा। लेकिन नीरजा अमावस की काली रात बन गई। रमेश के मन मे सशय जगा, और वह उसकी पुष्टि करने के लिए आतुर, व्याकुल हो उठा।

नीरजा पलग पर लेटी हुई थी। रमेश की तरफ से करवट ले रखी थी। रमेश ने उसे अपनी ओर करते हुए पूछा—'सो गईं क्या ?"

"नही तो," नीरजा ने रमेश की ओर देखे बिना कहा।

'जरा मेरी तरफ देखो," रमेश ने उसकी ठोडी ऊपर करते हुए कहा।

काली बरौनियो का परदा आँखो पर से उठा। दृष्टि रमेश के मुख पर जा टिकी। उसके मुख पर छाए भावो की छाया धीरे-धीरे नीरजा के मुख पर भी अपना प्रभाव डालने लगी। परेशान सी हो कर उसने पूछा, "क्या बात है ?"

"बात क्या है—यही मै तुमसे पूछना चाहता हू," सतुलित वाणी में रमेश ने उत्तर दिया।

"कैसी बात ? क्या पूछना चाहते हो ?" नीरजा अन्दर ही अन्दर अपना संतुलन खोती जा रही थी।

रमेश से यह छिप न सका। बोला, "बेकार की कोशिश कर रही हो अधिक छिपा न सकोगी।

"आप तो इस प्रकार पूछ रहे है, जैसे वकील चोर से जिरह कर रहा हो," नीरजा की आवाज मे थोडी झुँझलाहट थी।

रमेश ने मुसकरा कर कहा—'न तो मै वकील हू, और न तुम्हे चोर समझता हू। तुम्हारी उदासी ही मुझे इतने दिनो से परेशान कर रही है। लेकिन जब देखता हू कि अनाथालय उस बच्चे को देख कर तुम प्रसन्न हो उठती हो तो..." रमेश एक दम रुक गया।

'तो ?" नीरजा एक दम चौक पडी।

"सोचता हूं उसे अपने घर ले आऊं और यही रखू। क्या राय है तुम्हारी ?"

बादलो की टुकड़ियाँ बारी-बारी से अँधेरा और उजाला करती चाँद के ऊपर से गुजरने लगी—हाँ...नही ..हाँ ..नही .

"नही ।" और इसके साथ ही जैसे नीरजा ने स्वय अपने दिल पर एक भारी पत्थर दे पटका हो । उसका ममत्व चीत्कार कर उठा ।

"नही" रमेश ने आश्चर्य से पूछा । "वह तो तुम्हे बहुत अच्छा लगता है ?"

नीरजा 'नही' कहना चाहती थी, पर अनायास ही उसके मुँह से 'हाँ' निकल गया, जैसे शीशे के गोले को फोड कर उसके अन्दर बद वायु वेग से बाहर फूट पडी हो ।

"तब मै उसे जरूर ले आऊगा ।"

"नही, नही !" नीरजा जैसे चीख पडी । "पराए पाप को क्यो हम अपने घर मे पाले ?"

"मैने तो इसीलिए कहा था कि वह यहाँ रहेगा तो तुम भी प्रसन्न रहोगी । खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा ।" रमेश के हृदय पर रखा वजन हलका हो गया ।

उस दिन बात वही समाप्त हो गई । दिन बीतते गए । रमेश ने अब कभी नीरजा को उदास न पाया । उसने बहुत कोशिश की कि बाहरी प्रसन्नता के आवरण के पीछे क्या छिपा है, यह जान सके । पर अन्त मे हल न होने वाला प्रश्न समझ कर उस तरफ से ध्यान हटा लिया ।

लेकिन एक दिन शाम को जब वह लौट कर आया तो नीरजा को घर मे न पाकर चकित हो गया । यह कैसी अनहोनी बात ? पहले सोचा कही पडोस मे चली गई होगी । थोडी देर इतजार किया । पर फिर भी जब नीरजा न आई, तो नौकरानी को बुला कर पूछा । उससे मालूम हुआ कि नीरजा तो दोपहर की ही बाहर गई थी—किसीको कुछ बताया भी नही ।

रमेश का आश्चर्य और भी बढ गया । वह यह न सोच सका कि

अब क्या करे। आगे मार्ग दिखाई दे, तो उस पर चले भी।

कुछ होश आया, तो पहली आशका जो उसके मन मे उठी वह यह कि कही नीरजा के साथ कोई दुर्घटना तो नही हो गई। उसने शहर भर के थानो और अस्पतालो को फोन कर के पूछा। नही, किसी भी दुर्घटना का सम्बन्ध नीरजा से नही था।

तब? उलझा-सा, परेशान-सा वह पलग पर बैठ गया। तकिया उठा कर गोदी मे रखा और उस पर कोहनी टिका, हथेलियो मे मुँह गडाए विचारो मे डूब गया। निगाह कमरे मे चारो तरफ घूम रही थी। नीरजा की एक-एक चीज अपने स्थान पर ज्यो की त्यो रखी थी— सजी हुई, सँवरी हुई, स्पदनहीन, जैसे उन्हे पता न हो कि उनकी स्वामिनी इस घर को झकझोर कर चली गई है।

रमेश उठा और नीरजा की एक-एक वस्तु को हाथ से छू छू कर देखने लगा कि शायद उन मे से ही नीरजा प्रकट हो जाए।

शृगार-मेज पर चूडियो का डिब्बा रखा था। रमेश ने उसे खोला। चूडियो को छुआ तो खनखना उठी। लेकिन इनके नीचे यह कागज कैसा रखा है! रमेश ने उठाया और उसे खोल कर पढने लगा—

"रमेश, मै इस घर से सदा के लिए जा रही हू। कहाँ और क्यों— यह नही बताऊगी। समझ तो तुम भी जाओगे ही, पर मै स्वय कुछ कह कर तुम्हे दुख नही देना चाहती। क्षमा तो नही कर सकोगे, पर फिर भी... नीरजा"

लोहे समान इन ठडे और कठोर शब्दो की जंजीर रमेश की गरदन के चारो ओर लिपट कर उसका दम घोटने लगी। सारे शरीर से चनचना कर पसीना छूटने लगा। हृदय मानो सागर की अगम गहराइयों मे डूबता चला गया।

हो न हो उस बच्चे की ममता ही नीरजा को यहाँ से खीच कर ले गई है। कुछ देर बाद जब रमेश की विचार-शक्ति लौटी तो वह मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगा। लेकिन, जब मैने बच्चे को यहाँ

लाने का प्रस्ताव रखा था, तब क्यों उसने मना कर दिया । पराया पाप...पराया पाप ..रमेश इसी में उलझता गया...उलझता गया .. पराया...ओह, तो यह बात है। पराया नहीं ..अपना...नीरजा का अपना पाप... नीरजा का अपना पाप! घनघना कर जैसे एक भारी हथौड़ा रमेश के सिर पर पड़ा हो। कुलटा! जाने दो उसे। अच्छा हुआ स्वयं ही मुंह काला कर गई।

लेकिन रमेश का उस शहर में रहना दूभर हो गया। किस-किस को उत्तर दे कि उसकी पत्नी कहाँ चली गई है। वह शहर छोड़ कर दूसरी जगह चला गया।

पन्द्रह वर्ष बीत गए। समय की गर्द ने जाने अपने नीचे क्या-क्या छिपा लिया। रमेश ने भी पिछली बातें बहुत-कुछ भुला दी, लेकिन भूले-भटके नीरजा का ध्यान आ ही जाता। कहाँ होगी वह? कैसी होगी? फिर सोचता कही भी हो कैसी भी हो उसे क्या? लेकिन फिर भी...

रमेश ने दूसरा विवाह नही किया। चाहता तो कर सकता था, पर इच्छा ही नही हुई। नीरजा के प्रति उसके मन में जो क्रोध और घृणा थी, वह इन पन्द्रह वर्षों में कदाचित् नाममात्र को ही रह गई थी। उसके प्रति तटस्थता का भाव ही अधिक था। इन वर्षों मे जब भी उसने नीरजा को दोषी ठहराना चाहा उसे अपने-जैसे ही किसी पुरुष का दोष अधिक दिखाई दिया।

अपनी फर्म मे काम करने वालो को रमेश नौकरो की तरह नही समझता था। उसने कभी दो आदमियो का काम एक से नही लिया। उन पर कभी कोई मुसीबत पड़ती तो रमेश की न केवल पूरी सहानुभूति होती, बल्कि वह हर तरह से उनकी सहायता भी करता।

पिछले कुछ महीनो से रमेश की फर्म मे एक नया क्लर्क काम पर लगा था। उस युवक-मोहन-की कार्यपटुता से रमेश अत्याधिक प्रभावित था।

दो दिन से मोहन अपने काम पर नही आ रहा था, और न ही उस

ने कोई खबर भेजी थी। रमेश को चिन्ता हुई। उसने सोचा कि ड्राइवर को भेज कर उसकी खबर मगवाए। तभी मोहन स्वय आगया। उसकी दशा बडी खराब थी। बाल रूखे चेहरे पर हवाइया, घबराया हुआ।

देख कर रमेश ने पूछा—'क्या हुआ तुम्हे ? क्या बीमार हो ?"

"मै नही। मेरी माँ बीमार है, बचने की कम ही उम्मीद है। अगर माँ को कुछ हो गया तो मै अनाथ हो जाऊगा।" मोहन झिझकने लगा।

'तुम्हारे पिता नही है ?" रमेश ने पूछा।

"नही।"

'ओह, खैर, तुम कोई चिंता न करो, यह लो," रमेश ने मोहन को सौ रुपए का एक नोट पकडाते हुए कहा—"और जाकर अपनी माँ का ठीक से इलाज कराओ। और जरूरत पडे तो निस्सकोच माग लेना।"

मोहन का हृदय द्रवित हो उठा आखो मे आँसू भरे वह घर जाने लगा। तभी रमेश ने उसे रोक कर कहा—"ठहरो, मै भी तुम्हारे साथ चलता हू।"

एक छोटे-से कमरे मे घुसकर रमेश ने देखा गरदन तक लिहाफ ओढे कोई चालीस वर्ष की एक स्त्री आखे बन्द किए लेटी है। वह बुखार मे बेसुध थी। रमेश दो कदम उसके निकट जा कर खडा हो गया। उडती निगाह उसके चेहरे पर जम गई...याद के घोडे लगाम तोड कर दौडने लगे···स्त्री का चेहरा बदलने लगा......स्पष्ट होता गया . पंदरह वर्ष पहले का एक चेहरा ..जमे हुए दही मे जैसे गुलाबी रंग झलक मार रहा हो...नीरजा ! रमेश के होठ बुदबुदा पडे। सास तेज हो गया। उसने पास खडे मोहन की तरफ देखा...तो इसीके लिए नीरजा उसे छोड कर चली गई थी। जी में आया रमेश उन का गला घोट दे, सामने लेटी नीरजा की हत्या कर दे...उसने अपमान का बदला ले क्रूर बदला...जैसे-जैसे इस विचार की तीव्रता बढती गई रमेश का अंग-प्रत्यंग क्रोध में ऐसे कापने लगा जैसे आँधी में पेड का पत्ता।

"माँ का बुखार बहुत तेज हो गया है," मोहन ने रुआसा होकर

कहा।

रमेश जसे चौक पडा, उठते तूफान का गति रुक गई।

"माँ को कुछ हो गया तो मै अनाथ हो जाऊगा" मोहन सुबकने लगा।

रमेश ने एक नजर मोहन को देखा, फिर फिर नीरजा की—और फिर तेजी से कमरे से बाहर निकल गया, मोटर स्टार्ट की और एक्सीलरेटर दबा दिया। हवा को चीरती हुई मोटर बेतहाशा दौड़ने लगी... रमेश के विचार भी दौड रहे थे ..जिन्होने उसे अपमानित किया था, उनसे वह बदला भी न ले सका। क्यो ?...क्यो ?...पर कहा मिल सका उसे इस 'क्यो' का उत्तर।

दूसरे दिन जब वह अपने दफ्तर आया तो सूचना मिली कि मोहन की माँ रात को ही मर गई।

"अच्छा हुआ!" उसके मु ह से निकला। फिर सूचना देने वाले के भौचक मुख पर दृष्टि पडी तो सिटपिटा कर पूछा—"क्या कहा तुमने ?"

"कल रात मोहन की मा मर गई।"

रमेश बिना कुछ कहे एकदम उठा और सीधा मोहन के घर पहुंचा, माँ के शव से चिपटा मोहन बिलख रहा था।, रमेश चुपचाप एक तरफ खडा रहा। सहानुभूति के दो शब्द भी उसके मुख से न निकले।

लेकिन जब श्मशान घाट पर मोहन की माँ का शव चिता पर रखा गया, तो रमेश आगे बढ कर बोला, "अग्नि देने का अधिकार मेरा है।"

लोग आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए पीछे हट गए।

रमेश ने जब चिता मे आग लगाने के लिए हाथ बढाया तो उसे ऐसा लगा कि नीरजा मुसकरा रही है...कुछ कह रही है...रमेश के होंठ बुदबुदाए 'मै तुम्हारी बात समझ गया, नीरजा...।

वापस लौटने पर रमेश मोहन को अपने साथ ही अपने घर ले गया।

"आज से इस घर को तुम अपनी ही घर समझना" उसने मोहन के सिर पर दुलार से हाथ फेरते हुए कहा—"तुम्हारी माँ ..तुम्हारी मां...मेरी...भी ..कोई थी..." रमेश का गला भर आया।

रमाकान्त कान्त'

काश मैं कवि न होता

बाढ मे बिखरती नदी अपने ही जल मे सीचे पोसे खेतो को तबाह करके जब उतार पर आती है तब आवेग मे किए गए अपने कुकृत्य पर वह कितना-कितना सिर धुनती है—यह बात कितने लोग समझ पाते है।

मेरे इस सदा प्रफुल्लित व्यक्तित्व के पीछे आत्मग्लानि का कितना गहरा घुन लगा है, इसे ही कौन जानता है।

कोई जाने, इसका आग्रह भी क्यो हो , परन्तु मेरे लिए तो आत्म प्रवचना का मार्ग हे नही। बरस पर बरस बीतते गए है, बीतते जा रहे हैं, पर कहाँ भरा है वह घाव, जो सरोज का आत्म विसर्जन मुझे दे गया है ।

आत्म विसर्जन ही कहूंगा उसे, क्योकि सरोज की मौत आई नही थी, बुलाई गई थी। बुलाया भी उसे क्षिप्रगति से नही गया था, उसका आगमन हुआ था, धीर गम्भीर चरणो से।

कई बार मन पर जब ज्यादा बोझ हुआ है, जब पीडा असह्य हो गई है, तब मैने अपनी जीवन डोर को एक झटके से तोड़ देना चाहा है, परन्तु बढे हुए हाथ रुक गए हैं, उठे हुए चरण जड हो गए है, मेज पर पानी का गिलास और जहर की पुडिया रखी रह गई है।

क्यो अवरुद्ध कर गई हो मेरे सारे मार्ग तुम ? घुल घुलकर मरने

दुस्तर साधन का ही निर्देश क्यो दे गई हो तुम मुझे सरोज ?

बात तब की है जब जीवन मे ज्वार था, जब जग ने चेहरे की लुनाई को सोख नही लिया था, जब एक झूठे अहम ने विवेक की आँखो पर एक घना परदा डाल रखा था। उस अहम को झूठा तो खैर मै अब मानता हू, परन्तु तब तो प्राणपण से उसकी रक्षा करना ही एक-मात्र लक्ष्य मान बैठा था मै। मेरे उस अहम का दड विधाता ने सरोज को उठा कर दिया और उसी अहम का दड विधाता मुझे न उठा कर दे रहे है।

उस अहम का सृजन किया था मेरे अन्दर के कवि ने, उस अहम का पोषण किया था, कवि के रूप में मेरी ख्याति ने और उस अहम के शव को ढो रहा है अब यह ऊपर से हिमशीतल और भीतर से ज्वाल-ताप्त शील।

शील यानी मैं, प्रसिद्ध कवि सुधांशु। सरोज ने जाने क्यो मुझे शील नाम दिया था, पर पुकारती वह शील कह कर ही, कभी पूछा भी तो कहा दिया—"बस, अच्छा लगता है। तुम्हे सबसे अलग एक नाम से पुकारना अच्छा लगता है।"

सबसे अलग उसका, केवल उसका, अकेली सरोज का रहे शील—इस प्रयत्न मे वह बिखर गई, असख्य-असख्या खडो मे टूट कर रह गई।

सोचता हू—काश, ऐसा हो पाता, तो क्या अच्छा न रहता ? अपने जिस कवि की, जिस अहम की रक्षा मे मैंने सरोज की, सरोज को शील की हत्या कर दी, उसके गीत आज मुझे ही क्यो खोखले लगते हैं ? मेरे जिन गीतो पर आप झूम-झूम जाते है, उनपर क्या मै सिर धुन-धुनकर नहीं रह जाता ? शील का गला घोटकर मैंने सुधाशु के लिए तिल-तिल मरन मोल लिया है। इससे बडी विडम्बना की कल्पना कौन करेगा ?

प्रथम परिचय हुआ था सरोज के ही कालेज के कवि-सन्मेलन में। उस दिन तबियत मेरी कुछ खराब थी। हल्का-हल्का ज्वर था। आना नही चाहता था, परन्तु सयोजको का आग्रह और अपना भोला स्वभाव,

आखिर चला ही आया। हवा लगने से, श्रम से भी, मच पर बैठने के बाद ज्वर कुछ बढ गया। कहा मैंने किसी से कुछ नही, बस बैठा ही रहा चुपचाप। अपना नाम बुला, तो उठन पर चक्कर सा आने लगा। खैर किसी न किसी तरह कविता पढा दी।

तूने मुझको ठुकराया है जाने किसी बार,
वापस दान तुझे मै देता तेरा पहली बार,
इसे मै जीत कहू या हार!

गीत के अन्त तक पहुचते-पहुचते आँखो के आगे अधेरा-सा आने लगा था, तालियो की गडगडाहट कही दूर मे आती प्रतीत होने लगी थी। तभी "एक और" "एक गीत और", "कवि सुधाशुजी" की आवाजें आने लगी। सभापति महोदय ने भी आग्रह किया, संयोजकजी अपनी सफलता पर प्रफुल्लित—वह भी "जी, बस एक और कहने से क्यो चूकते, परन्तु दूसरी कविता पढना मेरे लिए असम्भव था—नम्रता से 'माइक पर कह दिया कि मुझे ज्वर है, आज और क्षमा करे।

संयोजकजी से कहा कि मेरे पहुँचाने का प्रबन्ध शीघ्र करे। वह जैसा कि प्राय होना है, हा-हा कह कर इधर-उधर खिसक गए। तभी किसी ने एक पर्ची मुझे थमा दिया। लिखा था—"कृपया मंच से उतर आए आप से कुछ काम है—जरूरी "भेजनेवाली, का नाम था सरोज। किसी सरोज से मेरा परिचय हो—याद नही आया। फिर भी कौतूहल वश डगमगाता-सा नीचे उतरा, तो फौरन एक लडकी ने बाहु का सहारा देकर कहा—"चलिए!"

मै हतप्रभ—इस अप्रत्याशित व्यवहार पर और लोग भी आश्चर्य-चकित! परन्तु आदेश-पालन के अतिरिक्त और मार्ग भी क्या था। सहारा लिए लिए बाहर आया। कुछ पूछने के लिए मुँह खोला, तो उत्तर मिला, 'बोलिए मत, चुपचाप बैठ जाइए।" और यह कहते-कहते एक कार का दरवाजा खोल, आराम से मुझे बैठा खुद 'स्टीयरिंग व्हील, पर आ बैठी। गाड़ी उसी की थी।

रास्ते में केमिस्ट के यहाँ गाडी रोककर जाने क्या दवा उसने खरीदी। घर पहुते-पहुते बुखार खूब तेज हो चुका था। कुछ धुंधली याद है—कमरे में मुझे लिटाकर, दवा पिला कर, जाने किस वक्त वह गई। सवेरे आँख खुली तो लगा कि व्यवस्था की कूची से सारा घर बुहार गई है—सब सामान करीने से, सब चीजे साफ! सच, क्या जादू होता है स्त्री के हाथ मे।

बाद की कहानी लम्बी है पर थोड़े मे कही जा सकती है। कैसे मैं कविता-कविता के पीछे अपने स्वास्थ्य को चौपट किए दे रहा हूँ—उसके ताने मिलते, आदमी को कैसे जिम्मेदारियाँ समझी चाहिए—उसका उपदेश मिलता। जीवन मे कैसे सुधा का अविरलस्रोत्र लाया जा सकता है—इसकी मधुर कल्पनाओ को प्रकाश मिलता।

और मुझे लगता वह हजार-हजार हाथो से मुझे बाँध लेना, जकड लेना चाहती है; मेरे कवि को, उन्मुक्त, स्वच्छन्द पछी को पिंजरे मे डाल देना चाहती है। अन्त मे उससे एक दिन कह दिया—'सरोज, तुम्हारे नेह-जतन का आभार सदा मेरे ऊपर रहेगा, परन्तु मेरे तुम्हारे मार्ग अलग हैं। विवाह करके साधारण गृहस्थ-जैसा सुखद जीवन बिताने का सौभाग्य लेकर मैं नही उतरा हूँ। अब तुम मुझसे न मिलने आया करो, यही ठीक रहेगा।

वह सचमुच फिर मुझसे मिलने नही आई। मिलने गया मैं। उसका आना सम्भव जो नही था। घुल-घुलकर अस्थिमात्र ही तो रह गई थी। बोली—"तुम्हे इसलिए बुलाया है शील, कि कही मेरी मृत्यु भी मेरे जीवन जैसी ही दुखद होकर न रह जाए। असीम मे विलय होने की वेला अब दूर नही है। पर जीवन का मोह है कि छूटे नही छूटता। क्यो शील, क्या सचमुच मेरे बन्धन इतने कटु हो चले थे?......"

और भी बहुत कुछ कहती रही। जीने की ललक लेकर सरोज गई, उसे क्या कभी भूल पाऊंगा मैं।

अन्त मे एक बे-बसी की सास छोडते हुए बोली—"अच्छा शील, आज अपनी वही कविता सुनाओ—

तूने ठुकराया है मुझको जाने कितनी बार,
वापस दान तुझे मै देता तेरा पहली बार,
उसे मै जीत कहू या हार ।

सरोज ने जाने मे और देर नही करी, देर कर रहा हू मै । वह सब याद आता है, तो एक प्रश्न मन में रह-रहकर उठता है—काश, मैं कवि न होता ?

रामावतार त्यागी

शंकर

खुरदरे बंजर सा फर्श, भुरजी के भाड से चूल्हे, सहस्रनेत्री दीवारें भोई भैंस की तरह काली और बेडौल छत और बिना तेल की ऊटगाड़ी की तरह चरमराता हुआ जर्जरित फर्नीचर, यह था कृष्ण भोजन भवन जिसकी शरण मे मुद्दत तक भोजनालयो का त्रास सहता-सहता मै आया था। लेकिन कृष्णा भोजनालय की इस सारी असुन्दरता और जीर्णता र खीझ उठने से पहले मेरी नज़र एक आदमी पर गई जो बंजर से ज्यादा खुर्दरा, भाड से ज्यादा कुरुप और फर्नीचर से ज्यादा जर्जरित था। भोजन भवन की दहलीज पर वह बैठा था जैसे जुगुप्सा का सजीव कार्टून द्वार के पास खडा कर दिया गया हो। भोजनालय में घुसते ही मैंने समझ लिया था कि यहा का मालिक कोई निहायत कंजूस और खून चूस आदमी होगा। खाने के वक्त भी वहा कम भीड देखकर मुझे आश्चर्य नही हुआ था क्योंकि घुडसाल की शक्ल के इस भोजनालय की दहलीज पर इतने फूहड और विद्रूप लगूर को बैठे देखकर कोई भी ऐसा आदमी जो कम से कम तीन दिन का भूखा नही है अन्दर आने का साहस भी मुशकिल से करेगा, खाना खाने की कौन कहे ? अन्दर आ गया था इस-लिए एक दम भागना उपयुक्त नही था। सोचा यही भोजन किया जाय। पढा था हिन्दूस्तान के बहुत से लोग बडा गन्दा खाना खाते है इस प्रेरणा से यह साहसिकता सर ओढने को तबीयत चाही। थाली मेरे सामने थी और रोटी का कौर मेरे हाथ में। मन में पूर्वायोजित

घृणा थी इसलिए भोजन की शक्ल अच्छी होने भी उसके बारे में कोई स्वादिष्ट कल्पना करना क्षितिज के उस पार की बात थी। कौर मुह में रख कर समझ मे आया मेरी परख ऊपरी थी। भोजन निहायत स्वादिष्ट था। कई महीने से ऐसा भोजन नही खाया था। चमकते होटलो मे ठगा जा चुका था, जो कि खूबसूरत साफ और चिकने तो थे लेकिन वहां भोजन अस्वादिष्ट और अग्राह्य। ऊपर का ढाचा जितना शानदार भीतर की वस्तु उतनी ही गलित, बाहर का आदमी जितना आकर्षक, अन्दर का आदमी उतना ही घृणित—सुन्दर शरीर, असुन्दर प्राण और यह कृष्णा भोजन भवन बाहर मे जितना कुरूप अन्दर से उतना ही रूपवान। क्या यह विद्रूप आदमी जितना घृणित है इसका प्राण उतना ही स्निग्ध नही हो सकता ? भोजन का रस लेता-लेता मै ऐसी ही तुलनात्मक कल्पनाये करता रहा। भोजन करके बाहर निकल रहा था तब फिर उस वीभत्स को देख कर जुगुप्सा से भर उठा और यह विचार भी मुझे न आया कि अभी-अभी मैने अच्छा खाना खाया था।

अब मै बकायदे कृष्णा भोजन भवन का सदस्य बन गया था। उस आदमी की तरफ मै कभी देखना नही चाहता था। पीले मेढक सी उसकी शक्ल और फिर आखें जैसे बाहर निकल पड़ेंगी। भला उसे मैं देखता भी क्यो। फिर भी उसे देखना था क्योकि उससे नफरत जो करता था।

वह बोलता कम था, सुनता भी कम था, बस बर्तन माजते-माजते आप ही कुछ बडबडाता था। मैल का उसके कपड़ो पर क्या कहना—यों तो गरीबी खुद एक बडा मैल है जो वस्त्र और अदमी दोनों को पूरी तरह से मैला रखती है, लेकिन इस औघड के लिए बाजार में साबुन बिकना और नल से पानी आना दोनो बन्द थे।

एक दिन मै खाना खा रहा था। वह पानी का गिलास लाया था। गिलास रखते हुए उसके हाथ को मैने देखा मैल से, काला था। गिलास को देखा उसके किनारे के नीचे की रेखा में चारो तरफ काला काला

मैल भरा हुआ था। एक तरफ अरहर की दाल का एक बीज पिसा हुआ चिपक रहा था। गिलास रखकर जैसे ही वह मुडा मैं उसके फहडपन पर तिलमिला उठा और एक झुझलाहट के साथ गिलास मैंने उसके ऊपर फेक मारा। गिलास का किनारा उसके पैर पर बैठ चुका था। खून उसके पैर से निकलता रहा, वह खामोश खडा रहा। कहा उसने कुछ नही, बस एक नजर भर मुझे इस तरह देखा जैसे किसी शरीर बच्चे की शैतानी को सौ वर्ष का परदादा मजे से देखता है। खून को देखकर मेरा क्रोध ठडा पड गया था। एक क्षण को मुझे लगा—"मैंने बुरा किया है।" उसकी आखो में मै देखता रहा, उन मे शिकायत नही थी, क्रोध भी नही था पर दया भी नही, बस कोरा व्यग था—अट्टहास था। एक क्षण को दया आई थी तुरन्त ही घृणा की विकृति से भरा उठा। उसके खून को देखकर मैंने सोचा कि गिलास इस मरे हुए आदमी को न मारकर थाल उठाकर इसके तोदल मालिक की पिलपिली खोपडी पर मार देना चाहिए था जिस की कजूसी ने इस विद्रूप मानव को दड के रूप में हम पर लाद कर दिया था।

शाम को फिर भोजनालय में भोजन करने की इच्छा से बैठा था। सुबह की घटना याद थी इसलिए चुपचाप बैठा दीवार पर टगे कैलेंडर में कैलाशपति शकर के चित्र को देख रहा था। उसी से मन लगाए था। मालिक ने आवाज दी—"शकर। गिलास ठीक से मांजकर बाबूजी को पानी-वानी देना।" मेरा ध्यान टूट गया, शकर—इस हैवान का नाम शकर। न जाने दुनिया वाले भी क्या सोच समझ कर महापुरुषो के नाम से ऐसे वनमानसो को सबोधित करने लगते हैं। भगवान शंकर का आत्म-तेज और मानव मात्र के प्रेम से आप्लुत प्राणवान हृदय और यह अधकार का मौसेरा भाई—जब लोग इसे शकर कहकर पुकारते हैं कैसा फूलता है मरदूद—मर क्यों नही जाता। उस वक्त गिलास मारने की बात पर मेरे मस्तिष्क ने मुझे विश्वास देकर कहा था—गिलास तुमने नही, शकर ने तुम्हे मारा था।" और अगर मुझे अपने गाव के उस

कुम्हार की बात याद कर, जिसने अपने दोनो लड़को का नाम जवाहर लाल और गोविन्द वल्लभ रख छोड़ा था, हसी न आई होती तो मैं उसे तोदल मालिक से भिड़ गया होता जो अपना काम गुप्त में चलाने के लिए इस गन्दे शकर को हम पर लादे हुए था।

खाना खाते एक सप्ताह हो गया था। कुछ अपने जैसे लापरवाहो से परिचय भी हो गया था। एक परिचित सज्जन से जो दो साल से वहाँ खाना खा रहे थे मैंने शिकायत के तौर पर कहा—'आप लोग इतने दिनो से यहा खाना खाते हैं लेकिन इस बीभत्स आदमी को आप लोग बर्दाश्त कैसे करते रहे हैं ?"

"शकर आदमी बहुत मजेदार और अच्छा है—"उन्होंने ने उत्तर दिया।

मैंने कहा—"माफ कीजिये, मेरी आप से बहुत बेतकल्लुफी तो नही है फिर भी कहूंगा कि आप को (aesthetic sense) सौंदर्य भावना का बोध नही है।

परिचित उम्र मे मुझ से कुछ, बुज़ुर्ग थे इसलिए बिगडे नही बोले—'आप शकर को नही जानते, जान भी नही सकते। वह कुछ पागल-सा है। उसका जीवन प्रवाह बहुत बडी ऊबड़-खाबड़ और दर्दीली परिस्थितियों से गुजरा है। समाज के जुल्म का वह शिकार है।"

"समाज को हम सभी बदनाम करते हैं—मैंने भड़क कर कहा।"

उनकी बात जारी थी—'जिस की माँ अपने मित्रो का घर लूटा बैठे, बीवी को रिश्तेदार बेच कर खा जायें, दस साल नौकरी करने पर भी बीमारी में इलाज के लिए जिसे दो पैसे न मिले उस आदमी के चेहरे पर संघर्ष की रेखायें नही होंगी तो क्या सुकुमारता और स्निग्धता होगी। जनाब, शकर में अब न उल्लास है, न विषाद, न स्नेह की भावना है न घृणा की, वह भविष्य की कल्पनाओ से भी उदासीन है और वर्तमान की कठोरता से भी। और घृणा और प्रेम दोनो से निर्लिप्त आदमी तो केवल पागल ही हो सकता है आप उसे प्रसन्न है, तो

उसे क्या ? अप्रसन्न है तो उसे क्या ?"

परिचित सज्जन की बात सारवान थी। मुझपर उसका असर भी हुआ पर शकर की गन्दगी और कुरूपता को मै प्यार कर सकू—यह मेरी कल्पना से परे की बात थी।

एक दिन नौकरी देर से खत्म हुई थी। पास मे कई होटल थे पर महीने का अन्त था जब मेरे जैसे बाबुओं की जेब सिर्फ चार अंगुल का सिला हुआ कपडा होती है। भूख से परेशान था फिर ऊपर से आग बरस रही थी। बदहवास सा भोजन भवन में आ पहुचा। रस्ते म ही निराशा से भर रहा था। भोजनालय में घुसते ही देखा पतीले और परात सब नल के पास लुढक रहे थे, बिल्कुल खाली, मेरी जेब की तरह। एक थाली मे रोटिया और साग लगे रखे थे और शकर अपने हाथ धोकर थाली की ओर जा रहा था, थाली उसी की थी। उसने मुझे नजर भर कर देखा, मेरी निराश आखो को देखा, मुरझाये हुए चेहरे और उदास लौटते पैरो को देखा।

"खाना नही खाओगे बाबू"—वह पहली बार मुझ से बोला। उसके कठ मे सहानुभूति थी। इस व्यवसाय की नगरी मे तो इतनी हमदर्दी से कोई रोटी छीनता भी नही है।

"भूख तो लगी है पर रोटी है कहा ?" मैने उसकी नजर से नजर बचाकर कहा।

मै बैठ गया था और उसने वही भोजन की थाली लाकर अपने उन्ही हाथो से मेरे सामने रख दी वगैर यह सोचे कि अगर गिलास की तरह थाली भी मैने उसके ऊपर फेंक मारी तो वह फिर खून से नहा उठेगा। भूखा वह भी था। थाली की जली भुनी रोटियां और खुरची हुई सब्जी इस बात को कह रही थी कि शकर के अलावा और किसी से उनका सबंध नही था। पर उसके चेहरे पर भूख की अलामत नही थी। मैने शिष्टता से कहा—"शकर यह खाना तो तुम्हारा है। इसे मै नही खाऊगा।" "नही भैया यह तो तुम्हारी ही थाली है मै तो आप की

ही राह देख रहा था।"—शकर करुणार्द्र हो उठा था।

मै जानता था कि वह झूठ बोल रहा है फिर भी उसका 'मन रखना चाहिये' इस बहाने खाने लगा। मै खाता जाता था और बीच बीच मे उसके चेहरे को मनोवैज्ञानिक की तरह पढ़ता था। वह खिल उठा था, उसे सुख मिल रहा था। बात छोटी थी केवल एक समय के भोजन की, लेकिन देना छोटा नही होता वह बहुत महान होता है इसी-लिए हर आदमी दे नही पाता। खा चुकने के बाद डकार लेकर मेरे आपे ने मुझे बताया उस दिन गिलास शकर न नही, मैंने शंकर को मारा था।

तब मैंने शंकर का खाना खाया था और शकर ने मेरी नफरत। फर्क यह था कि मैं भूख मिटाकर भी भूखा ही था और वह भूखा रह कर भी तृप्त था।

रात को घूमने के लिए निकला था। भोजनालय के सामने से गुजर रहा था। उसी दहलीज पर बैठा शकर चाय छान रहा था। मै उसे देखकर कुछ रुक गया था।

'चाय पिओगे बाबू ?" मुझ से बोला

सिर्फ "नही' कहकर मैं उन सज्जन से बात करने लगा जो उस दिन शकर को मजेदार आदमी कह रहे थे। नही पीयेंगे—उसने धीरे से दोहराया जैसे दर्द का पहाड़ फुसफुसाया हो पर मैंने अनसुना कर दिया। मेरा विचार है उसे बुरा लगा था। वह मेरी घृणा से नहीं हिला था, उपेक्षा से काप गया था। बात करते—करते मैं देखता रहा कि शंकर ने बगैर पिये ही सारी चाय नाली मे बहा दी थी और बीड़ी जला कर जूठे बर्तनो के पास बैठा हुआ वह अधकार मे देख रहा था—कुछ सोच रहा था।

झूटमुटे में खाना खाने भोजन भवन की ओर आ रहा था। रास्ते में एक दूकान के तख्ते पर बैठे एक लगड़े भिखारी के पास शकर को खड़े पाया। वह एक मैले कपड़े से खोलकर उसे कुछ दे रहा था।

रोटिया थी। शकर मुझे देखकर कुछ सकपका सा गया । चलते हुए मैंने पूछा—

शकर कौन था वह लगडा ?

"लंगडा था।"—शकर ने संक्षिप्त कहा।

"अगर मैं तेरे मालिक से यह बात जाकर कहूं तो"—

'तो उस बेचारे को रोज भूखा रहना पडेगा ।"

उसके साथ क्या गुजरेगी इसका ध्यान भी उसे नही था। उसे उस अपरिचित लंगड़े की फिक्र थी। पता चला शकर काफी दिनो से लगड़े को नियमित रूप से रोटिया पहुचा रहा था। सोचता रहा इस पागल शकर के कुरूप शरीर में इतनी स्निग्ध प्राण क्यो हैं। इसके साथ दुनिया ने क्या भला किया है जो दुनियाँ भर के दुखियो के लिए यह मरा जाता है।

सर्दी आ गई थी। और इधर खोजते खोजते दूर के एक मुहल्ले में मुझे मकान भी मिल गया था। शकर के पास कोई गर्म कपडा नहीं था इसलिए मकान मिलने की खुशी में उसके लिए एक कम पैसो की ऊनी जरसी खरीद कर लाया था। भोजन भवन पहुच कर देखा शकर कोयले वाली कोठरी में फटा कबल ओढे लेटा था। कुछ बीमार था । जरसी देते हुए मैंने कहा—"शकर, तेरा भोजन-भवन छोडकर जा रहा हू यह जरसी तुझे दोस्ती के तौर से दे रहा हूं एक दो दिन में तुझे देखने भी आऊंगा।"

जरसी उसने सिराहने रखली थी। मै चलने को हुआ तो बोला—"बाबू'—

"क्या है शकर?' मैने पूछा।'

वह चुप हो गया था। कुछ सोच रहा था। मेरे पूछने पर बोला—"आज लंगड़ा भूखा ही रहेगा।"

"मरने दे उस लंगडे को। तू अपनी बीमारी की फिक्र कर"—मै झुंझला कर बोला। वह चुप हो गया और मै वहा का हिसाब-किताब

चुका कर नए मकान में चला आया।

× × ×

कोई बीस दिन बाद याद आया शंकर बीमार है। दोस्त को देख आऊं।

भोजन-भवन पहुंचकर देखा उस जरसी को पहने दूसरा आदमी बर्तन मांज रहा था। शंकर ने मेरी जरसी दूसरे को देकर मेरा अपमान किया था इसी तुनक से झुंझलाकर मैंने मालिक से पूछा—"शंकर कहाँ है पंडित जी।"

मालिक मेरी आवाज सुनकर कुछ उदास-सा होकर बोला—"बहुत दिन बाद आये बाबू! शंकर आपको बहुत पूछता था।"

"पर शंकर है कहां?"—मैंने उतावलेपन में पूछा।

'शंकर तो दस दिन हुए मर गया बाबू!" आह लेकर मालिक ने धीरे से कहा—

शंकर मर चुका था दस दिन पहले और मैं दस दिन बाद उसकी खबर लेने आया था। मेरा मन अपने प्रति ग्लानि से भर उठा। नए मकान की खुशी में मैं यह भी भूल गया था कि शंकर बीमार था और शंकर बीमारी में भी यह न भूला था कि उस जाड़े को रोटी नहीं मिलेगी। आज फिर कालेंडर में भगवान शंकर के चित्र को देखता रहा। आज उस मरे हुए उपेक्षित शंकर और चित्र के पीछे छिपी हुई भावना के शंकर का तादात्म्य हो गया था। काश एक बार और शंकर को देख पाता तो उसके खुरदरे चरणों को अपने आंसुओं से धोकर कहता—"अपने रूपवान हृदय की एक धड़कन ही मुझे उधार दे दो, तो अपने को धन्य समझूं।"

रामानन्द 'दोषी'

यात्रा का अन्त

नीचे स्कूल की बस ने आकर हार्न दिया। मुकुल और मीना ने अपनी किताबे बगल में दबाई और भाग उठे। मंजु ने तेज डगो से आ कर खिडकी खोली और नीचे झाकने लगी। दोनो बच्चे तब तक गाडी के पास पहुच चुके थे। झपट कर उसमे चढने से पहले उनकी नजरें ऊपर उठी और तीनो के मुह पर मुसकान खेल गई।

"ममी, टाटा!" दोनो बच्चो ने नन्हे-नन्हे हाथ हवा में हिलाते हुए कहा। मजु की अलस हथेली हवा में लहराई और बस घरं-घरं करती बढ गई।

कुछ देर वह वही खडी सडक की ओर यो ही देखती रही। पति पहले ही दफ्तर जा चुके थे। कल रविवार है—सब की छुट्टी का दिन। पिकनिक की बात तय हो चुकी है। कल सारा परिवार—पति और दोनो बच्चे—सारे समय उसी के साथ रहेगे और वह किसी बडे पक्षी की तरह अपने डैनो मे उन्हे सरक्षण दिए उनकी गरमाहट महसूस करती रहेगी। एक भीनी सरसराहट उसे अपनी नसो मे सरसराती प्रतीत हुई। अन्तर का सतोष अनजाने ही होठो पर हलका सा विहस उठा।

खिडकी बद करने के लिए दोनो पल्लो पर उसके हाथो की पकड जरा सबल हो आई। परन्तु थोडा पीछे हट कर पल्ले बद करते करते ज्यो

ही उसकी दृष्टि सामने वाले मकान पर पडी वह मग्न रह गई । एक क्षण को जैसे उसे काठ मार गया । फिर किन हाथो से उसने खडकी बद की और किन पैरो से सोफे पर आकर धम से गिर पडी—यह उसे खुद नही मालूम ।

सामने वाली खिडकी मे वही खडा था...वही... अदित, बाल खूब अस्तव्यस्त, चेहरा पहले से बहुत उतरा हुआ, आखे कही गहरे मे घसी हुई परन्तु उन पर वही पहने वाला काले फ्रेम का चश्मा और उस में से झाकता हुआ वही पैनापन । सूखे सूखे होठ, परन्तु वैसे ही भिचे भिचे, मानो कहने को बहुत कुछ है परन्तु वे खुलेगे नही, कुछ कहेगे नही ।

और यह जो अदित, दस लबे वर्षों के बाद आज सामने वाली खिडकी पर खडा है, अनजाने मे यहाँ नही आ गया है, क्योकि अपलक दृष्टि से वह उसे ही देख रहा था । अचानक और अनपेक्षित मिलन से उत्पन्न विस्मय और कुतूहल का भाव उधर नही था, और न था अपनी ओर से आगे बढ कर अपनी उपस्थिति का परिचय देने का औत्सुक्य ।

तब इस नए शहर में अपरिचित स्थान पर, इतना सब पता लगाते लगाते, सब कुछ जानबूझ लेन के बाद वह आज क्यो यहा है ? आखिर क्यो वह इस तरह वहा खड़ा है, देख रहा है ?

मंजु को लगा मानो उसकी पैनी दृष्टि दीवार की ईंटो और किवाड़ो की लकडी को पार कर उसी पर जमी हुई है । उसका सिर चकराने लगा । दोनो हाथो से माथा थाम कर वह सिसक उठी ।

दस वर्ष पहले की वह बात है । मंजु तब बी० ए० मे पढती थी । धनीमानी पिता की लाडली बेटी, कक्षा में प्रथम आने वाली अप्रतिम रूपवती मजु पर लक्ष्मी, सरस्वती और विधाता ने सम्मिलित रूप से मुक्तहस्त हो कर अपने कोष लुटाए थे । वह कितनी भाग्यवान है, इसे मंजु अच्छी तरह जानती थी । परन्तु इस देन को उसने गर्वित हो कर नही, अपितु साभार ग्रहण किया था ।

कालिज की हिन्दी परिषद की वह मंत्री थी । उस रात परिषद की

ग्रोर से एक कवि सम्मेलन का ग्रायोजन था। नगर के ही कोई दस बारह कवि ग्रामन्त्रित थे। मंजु के मंत्री होने के नाते टीमटाप स्वभावत: पर्याप्त मात्रा में थी।

सम्मेलन धीरे धीरे रग पर ग्राता जा रहा था कि मच पर सहसा हलचल सी होने लगी मजु ने पीछे फिर कर देखा। सिल्क का कुरता, चौडे पायचे का पायजामा, ग्राखो पर काले फ्रेम का चश्मा, छरहरा सजीला बदन, मुख पर साधना का गाभीर्य ग्रौर सारल्य का सम्मोहन—इसी ग्रपरिचित युवक को बडे समादर से ग्रागे मंच पर ग्राने का ग्रामन्त्रण दिया जा रहा था।

"कौन हैं यह ?" मंजु ने धीरे से सभापति से पूछा।

"ग्ररे ! इन्हे नही पहचानती—श्री ग्रदित !"

मजु तपाक से उठ खडी हुई। प्रसन्नता से उसका मन नाच उठा। ग्रदित जैसे ख्यातिप्राप्त कवि को ग्रपने ग्रायोजन में ग्राया देख कोई भी सयोजक धन्य हो उठता। जल्दी जल्दी पैर बढाती वह ग्रदित के पास पहुच गई।

"नमस्ते !"

"नमस्ते !"

"जी, मै...जी...ग्राप..."

"मै ग्रदित हू। किसी ने ग्राप ही की ग्रोर सकेत किया था—ग्राप सभवत सयोजक हैं ग्राज के इस सम्मेलन की ?"

"जी.. हा, जी...ग्राप .."

ग्ररे ग्राप इतना बोखला क्यो गई हैं ? इतना हौवा जैसा तो शायद मै नही लगता हूं। ग्राप को यहा मेरी उपस्थिति पर ग्राश्चर्य हो रहा है न ? देखिए, बात यह है कि ग्रापके इस नगर में किसी निजी काम से मैं ग्राया था। काम पूरा हो गया परन्तु वापसी के लिए गाडी तो सवेरे से पहले मिलेगी नही। समय काटने की समस्या को सुलझाने के लिए सिनेमा का सहारा लेना सोचा था कि ग्रापके इस कवि सम्मेलन

का पोस्टर नजर पड गया। सो चला आ रहा हू।"

"असीम अनुग्रह है आपका।" मजु का कण्ठ अब फूटा। "धृष्टता तो होगी, परन्तु मेरा अनुग्रह है कि आपको कुछ न कुछ हमारे यहा आज पढना अवश्य पडेगा।"

'आया हू तो क्यो न पढूंगा। यह मैं भी..."

"एक मिनट के लिए क्षमा करे, मै अभी आई।"

दूसरे क्षण मंजु माइक पर पहुच चुकी थी। उसकी प्रसन्नता का वारापार न था। कांपते हाथो माइक को थाम कर घोषणा की।

"आज हमारे इस कालिज का ही नही, अपितु सारे नगर का सौभाग्य है कि हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठत कवि श्री अदित हमारे बीच विद्यमान हैं। सभोजिका के नाते मुझे गर्व है कि इस सम्मेलन को उनकी पग धूलि प्राप्त हुई। उनके प्रति परम आभार के साथ मैं हर्ष से गद्‌गद होकर यह घोषणा करती हूं कि थोड़ी देर मे आपको उनकी रचनाए सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा..."

शेष वाक्य तालियो की गड़गडाहट में डूब गया। अदित के पास आ कर उसने कहा, "अब पहले यह बतलाइए कि आप पिएंगे क्या ?"

"कौफी। मगर यहा नही, बाहर किसी रेस्तरा मे बैठ कर।"

कौफी बना कर प्याला उसकी ओर सरकाते हुए मजु ने कहा, "अदित जी किस मुँह से धन्यवाद दूं मै आज आप को !"

धन्यवाद की कोई बात है—ऐसा तो मै समझता नही। कविता हृदय में उभरती है, तो लिख लेता हू। मेरा आशय है बन तो वह स्वय जाती है' मै तो उसे कागज पर उतारने भर का परिश्रम करता हू, जिसके बदले प्रकाशको से रायल्टी मिल जाती है और कवि सम्मेलनो से नजराना। फिर धन्यवाद की गुँजाइश ही कहा रहती है।"

मंजु की कौफी का स्वाद सहसा जैसे कड़वा हो उठा। किसी तरह उसे गले के नीचे उतार कर बोली, "जी, हमें तो आभारी होना ही चाहिए। हम पर तो कृपा ही की है आपने।"

"देखिए आभार आप मानें—वह आपकी विनय है, धन्यवाद आप दें—वह आपका सौजन्य है। मैं तो केवल अपने नियम की बात कह रहा था कि बिना पारिश्रमिक लिए न मैं अपनी कोई कृति प्रकाशित होने देता हू और न कही कुछ पढता हू। नियम तो, आप जानती हैं, नियम ही है। वह है ही इसलिए कि उस का पालन हो। मगर आप कौफी पीजिए न, ठडी हुई जा रही है।"

अशिष्टता की भी कोई सीमा होती है! क्रोध और क्षोभ से मजु का चेहरा लाल हो आया। दूर से ऐसा प्रभावक व्यक्तित्व पास से ऐसा ओछा भी हो सकता है—यह उसने आज जाना। प्याले की ओर झुकते हुए, गरदन थोड़ी टेढी करके, भौह जरा चढा कर उसने पूछ लिया। और आपका नजराना?"

"वह अधिक नही है सिर्फ दो सौ रुपए।"

"और यदि वह आपको न मिले?"

तो मैंने कहा न कि मैं इतना पारिश्रमिक लिए बिना कही कविता नही पढता।"

"तो जहाँ आप कविता नही पढेंगे, उन स्थानो की सूची में हमारे नगर का नाम भी लिख लीजिए, मिस्टर अदित।"

वह हो हो कर हंस पडा। "सो तो लिख लिया, परन्तु आप इतनी नाराज क्यो हैं?"

इसलिए कि मै मनुष्यता को कविता से कही ऊची चीज समझती हू। आप कवि चाहे जितने बडे हो, अदित जी, परन्तु मनुष्य आप बहुत छोटे है। छात्र परिषदो के पास पैसे की क्या स्थिति होती है यह आप न जानते हो—ऐसा नही है। हमारे पास पैसा होता तो शायद आप को यो बिना बुलाए आने का कष्ट न करना पडता। तब तो हम आप को सादर निमन्त्रित कर के लाते। यह सब जानबूझ कर ऐसी माग रखने वाले के प्रति आदर क्या रह सकता है? मैं चली। बिल काउटर पर देती जाऊगी।" मजु उठ खडी हुई।

"अरे, बैठिए न। इतनी भी क्या आतुरता! एक बात शायद आप समझी नहीं, इसी से नाराज हो कर एक दम चली जा रही है।"

आशा की एक किरण फिर झलक उठी। मंजु ने बैठते बैठते कहा "वह क्या ?"

वह यह कि अपने बारे में मुझे और चाहे कुछ न ज्ञात हो, इतना अवश्य मालूम है कि लोकप्रियता का मैंने खूब अर्जन किया है। एक बार यह बताने के बाद मैं कविता पाठ करूंगा, अब यदि आप यह घोषणा करेंगी कि अदित चाहे कवि जितना बड़ा हो मनुष्य वह बहुत छोटा है, इसलिए हम उससे कविता पढ़वाने में असमर्थ हैं—तो आप जानती हैं क्या होगा ? कालिज का हजारों का फरनीचर टूटेगा और आप शरम के मारे मुँह न दिखा सकेंगी।'

परिस्थिति की विषमता मंजु के ध्यान में अब आई। उसने आंखों में आखें डाल कर पहली बार अदित को देखा। आंखों में लाज की डोरी नहीं, चेहरे पर कहीं कुटिलता की कालिमा नहीं, और स्वर में कहीं नीचता का आभास नहीं—उफ, कितना बड़ा पाखंडी है यह अदित! ऐसी ओछी बातें कितने सहज भाव से कहे चला जा रहा है!

मंजु की असहायता घनी हो आई। स्वर रुआंसा हो गया: "निरे पशु हो तुम ? निकट से क्या ऐसा ही बीभत्स रूप है तुम्हारा ? मुझे लाचार देखकर तुम क्यों दबाना चाहते हो ? मैंने कहा न कि परिषद के पास नहीं है इतना धन।"

"परिषद के पास न हो, तुम्हारे पास तो हो सकता है। बड़े बाप की बेटी हो—दो सौ तो बहुत मामूली सी रकम है तुम्हारे लिए।" अदित ने सिर झुकाए झुकाए निर्लिप्त भाव से कहा।

मंजु बुरी तरह झल्ला उठी: "बड़े बाप की बेटी हूं तो मुझे ही न ले जाओ उठा कर!'

चिहुंक कर अदित ने सिर उठाया, गहरी होकर आंखों से आखें मिलीं और वह देखता रह गया।

मंजु ने अनुभव किया कि उस काले फ्रेम के चश्मे की ओट में जो पैनी-पैनी आखें है, वे ही है उस के व्यक्तित्व की विशिष्टता । उस दृष्टि का तेज उस से सहन न हो सका। पलकें नीचे झप गई। मन मे बराबर हो रहा था · "हाय, यह क्या कहा मैने ! हाय, राम...मै यह क्या कह बैठी !"

उस अविचल मौन का क्षण क्षण युगो सा बीत रहा था । बिना ऊपर देखे ही मंजु ने जान लिया कि वे पैनी आखे उसी पर जमी है—अलपक, निर्निमेष, अविचल...मौन टूटा।

परन्तु यह किस का स्वर है ? उसका तो निश्चित रूप से नही है जो सामने बैठा अभी तक बातें रहा था। इसमें जो गूंज है वैसी तो कठ से निकले स्वर में होती नही। ऐसा स्वर केवल हृदय से फूटता है। स्वर में एक अनिवार्य बाध्यता थी, एक अकाट्य सम्मोहन : "तुम्हे ! अच्छा, तुम्हे भी लेने आऊँगा। एक दिन जरूर आऊंगा, मजु—भूलना नही।"

उस एक क्षण में न जाने कौन कहाँ से आ कर बता गया कि यह है अदित जो वास्तविक है, जो कवि है—बाकी का जो मनुष्य अदित है, जो प्रतीत है वह धोखा है, उसका आवरण मात्र है—कठोर और दुर्भेद !

परन्तु यह प्रतीत निमिष भर ही रही होगी कि तभी एक दूसरी आवाज सुनाई पडी वही पहले वाली परिचित आवाज, मनुष्य अदित की आवाज "परन्तु आज नही। आज तो रुपए लेने आया हू। दो सौ रुपए—सम्मेलन का पारिश्रमिक।" यह था वाक्य का उत्तरार्द्ध।

सम्मोहन टूट चुका था। "यू ब्रूट !" मजु के मुँह से निकल गया। पर्स खोल कर उसने दो सौ का चैक काट दिया। "कमीना कही का !" वह मुँह ही मुह बुदबुदा रही थी।

"चाहे ता यह सब जोर से भी कह सकती हे। मुझे इस तरह की बातें सुनने की आदत है।" वह फिर हस पडा कैसी ढाठ हसी थी वह !

फिर एक दम उठ खड़ा हुआ 'चलिए आपके सम्मेलन में मेरी प्रतीक्षा हो रही है।"

यह था प्रथम परिचय जो मंजु के जीवनपथ को शिला के समान घेर कर बैठ गया। पढ़ने बैठती तो किताबों की काली काली पंक्तियां सहसा जाने किस जादू से वृत्ताकार हो उठती। फिर एक वृत्त के दो वृत हो जाते, ठीक उस चश्मे के काले फ्रेम के आकार के और उनमें से उभर आती दो पैनी पैनी आंखें।

आसपास का कोलाहल जाने कौन से मंत्र से एक गहन नाद हो उठता, जिस की गूंज में एक स्वर निखर आता "तुम्हें! अच्छा, तुम्हें भी लेने आऊँगा। एक दिन जरूर आऊंगा, मंजु—भूलना नहीं।"

फिर वह स्वर और वह दृष्टि जाने किस अज्ञात अन्तर को कुरेद देती कि आंखों की कोरें सजल हो आती। मिनिट बीतते, फिर घंटे। कई कई दिन बीत जाते। और उन निगाहों में खोई, उन स्वरों में भूली मंजु जाने कहां कहां भटकती रहती ..भटकती रहती।

फिर कहीं से एक दूसरी आवाज आती—उच्छृंखल आवाज "परन्तु आज नहीं। आज तो मैं दो सौ रुपए लेने आया हूं—सम्मेलन का पारिश्रमिक।"

सम्मोहन टूट जाता। वह बुदबुदा उठती . "ब्रूट"

यह दूसरी आवाज मंजु का सबसे बड़ा सहारा थी। इसकी याद को वह कुरेद कुरेद कर ताजा रखती। यही तो थी उस सम्मोहन की काट। कभी उस का मन कृतज्ञता से भर आता; "कैसे मायावी हो जी तुम! इतने गहरे आवरण में न छिपे रहते तो तुम्हारा तेज कैसे सहन होता! एक क्षण को तुम ने परदा उठाया था, बस एक बात कही थी—उसी की मार से तड़प तड़प उठूंगी, यह जान कर ही तो इतनी गहरी कटु स्मृतियां छोड़ गए हो। लेने आने को कह कह तुम आए जो नहीं—इसका भार तुम्हारे बल पर ही तो वहन कर रही हूं।"

मंजु प्रतीक्षा करती रही, परन्तु दिन, मास और वर्ष प्रतीक्षा में

ठहरे न रह सके, कालिज में अब उस की वह धाक न रही, फाइनल में फेल हो गई थी, स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया, घर में वह हर किसी से उलझ बैठती. लू के एक ही झोंके ने बाहर को झुलसा दिया था, उसकी खीझ बराबर बढ़ती जा रही थी, अदित से भी अधिक झुंझलाहट थी उसे अपने ऊपर।

तभी एक दिन उस के नाम एक पार्सल आया, अदित ने भेजा था। ढेर सी कविताओं की पांडुलिपियां थी उस में, एक दो पुस्तकों की योजना भी थी, साथ में एक पत्र था —बहुत हा संक्षिप्त —"एक डकैती के सिलसिले मे पुलिस मेरे पीछे है, आँखमिचौनी के इस खेल में पकड़ा अतन मैं ही जाऊंगा, ये रचनाएं तुम्हारे पास सुरक्षित रहेगी—इस आशा से भेज रहा हूं।"

तो अदित डाकू भी है ! घृणा से मजु का मन भर गया, एक क्षण के उस स्वर का सम्मोहन अब पूर्णत तिरोहित हो गया । बड़ी ग्लानि हो गई अपने ऊपर।

इधर बहुत दिन से विवाह के लिए वह पिता के आग्रह को टालती आ रही थी, आज उसने स्वीकृत दे दी, विवाह के बाद मजु ने पति के जीवन मे अपने को पूरी तरह घुला दिया, वैसे भी ऐसा घर वर हर किसी को नही मिलता, पति का सपूर्ण प्यार उसे मिला था और अपना सपूर्ण समर्पण उन्हे किया था।

एक दिन पति ने बड़ी हड़बड़ी में सवेरे ही सवेरे मजु को जगाया: "सुनती हो ! बलराज गिरफ्तार हो गया।"

आँख मीजते-मीजते मजु घबराई सी बोली "कौन बलराज ! क्या क्रांतिकारी बलराज ? अखबार जरा मुझे दीजिए, देश का कैसा दुर्भाग्य है !"

रहस्यमय बलराज, जिस ने विदेशी सरकार के नाकों दम कर रखा था, सभी के लिए एक रहस्य था, वह कौन है, कहाँ का है, कैसा है—वह किसी को भी पता न था, अखबार में उस का समाचार भी था और

चित्र भी, चित्र देखकर मंजु मग्न रह गई, बलंराज और कोई नहीं अदित था।

एक बडा गहरा धक्का उसे लगा, आज समझ मे आया कि क्यो अदित को उस दिन रुपयो की इतना सख्त जरूरत थी और किस डकैती में पुलिस उस के पीछे थी, पूरे हुए घाव एक बार फिर हरे हो आए, शिथिल टीसें फिर उभर उठी, परन्तु अब तीर कमान मे निकल चुका था, हाय, अदित ! तुमने काश तनिक सा भी आभास अपनी साधना का दिया होता !

अब तो वह बात भी बहुत पुरानी हो चुकी थी, मंजु अब दो प्यारे प्यारे बच्चो की माँ थी, जीवन के नूतन अध्याय को उसने आत्मसात कर लिया था ''।

विगत की स्मृति नही, अनागत की प्रतीक्षा नही, केवल वर्तमान का स्वीकृति—संभवत जीवन का यही दर्शन मुक्ति का मूलमत्र है, फिर आज यही अदित यहाँ क्यो है—क्यो वह आज उसके जीवन में फिर से काटे उगाने आया है ?

वह उठ खडी हुई, न चाहते हुए भी उस ने किवाड की संधि में से झाक लिया, वह वही, उसी मुद्रा में उसी ओर देखता खड़ा था, क्यो खड़ा है वह ऐसे ? कब तक खडा रहेग ? कब से खडा है ? अच्छा, खडा रहे—''मंजु उसकी उपेक्षा कर देगी। वहा से वह हटा आई।

पर अब ? अब क्या करे ? किसी काम मे तो मन नही लगता। पैर तो बरबस खिडकी की ओर खिचते हैं। आखे तो उस सधि पर लगी है, आखिर यह क्या है ? क्या है यह सब ? नही इससे सहन नही होगा — इसका फैसला किए बिना वह आखिर जिएगी कैसे !

एक झटके के साथ वह उठ खडी हुई, पैरों में चप्पल डाली, जीने तक पहुंची, फिर कुछ याद आया, लौटी, अलमारी खोली, पति का रिवाल्वर निकाला, गोलिया भरी, सेफ्टी कैच चढाया और उसे आंचल में छिपा कर नीचे उतर आई।

सामने वाले मकान के दरवाजे पर दस्तक देने को उसने हाथ उठाया ही था कि वह खुल गया, सामने वही था।

'आओ, अन्दर आ जाओ।" उसे अन्दर लेकर द्वार बन्द हो गया— 'इधर से आओ, मेरे पीछे-पीछे।"

ऊपर पहुँच कर एक कमरे में वह घुसी तो खटके की आवाज सुन मुड कर देखा, दरवाजे में ताला डाल कर वह चाभी को जेब में रख रहा था।

मंजु के नथुने जरा फैल गए, होठो की कोरें थोड़ी दब गई, रिवाल्वर को उसने और भी कस कर पकड लिया और छिटक कर दूसरे कोने में जा खड़ी हुई।

हंस कर वह बोल उठा—"बहुत डर लगता है क्या ?"

मंजु चुप।

"फिर आई ही क्यो थी ?"

अब इस बात का भी कोई जवाब हो सकता है !

"परन्तु मै जानता था कि तुम जरूर आओगी। तुम तो शायद भूल गई हो, मंजु, कि मुझे भी एक दिन लौट कर आना था।"

मंजु की ओर से इसका भी कोई प्रतिकार नही किया गया।

"हमारी नई आजाद सरकार ने रिहा कर दिया है। और अब मै आ गया हू।"

मंजु का कंठ इस बार फूटा—"क्यो आए हो आज तुम ?"

'मैंने वचन जो दिया था कि एक दिन तुम्हे लेने जरूर आऊँगा।"

"और जो मै न चलू ?"

हसते हुए वह बोला—"तुम ने चलने को कहा ही कब था ? तुम ने तो उठा ले जाने के लिए की बात कही थी।'-

"ओह ! तो तुम उठा ले जाने के लिए आए हो—भला कैसे ?"

"बहुत मामूली बात है. ...." अदित उसकी ओर बढा।

"अदित, वही खड़े रह कर बात करो, यह देखते हो—सात गोली

वाला रिवाल्वर, और पूरा भरा हुआ, एक कदम तुम बढ़े और वहीं ेर हुए।"

"अच्छा, यह भी साथ ही लाई हो तुम !"

"तुम्हे क्या पहचानती नही हू, तो खाली हाथ आने की भूल करती, मेरी बात सुनो, अदित. ...।"

"एक मिनिट, मंजु जरा जरूरी काम हे।" उसके मुंह पर एकदम किसी गंभीर निश्चय की रेखा खिच गई। जेब से कलम व कागज निकाला, जल्दी-जल्दी उस पर कुछ घसीटा और फिर दोनो चीजो जेब में रखते हुए बोला—"हा, अब कहो।"

"देखो' अदिन, अतीत को हम बाहो मे घेरे नही बैठे रह सकते। जो बीत गया वह दूर गया। तुम्हे पा सकती, ैसा मेरा भाग्य नही था। पा लेती तो कैसा लगता, यह भी नही जानती। परन्तु असन्तुष्ट मै आज नही हू। अच्छे-भले मेरे पति है, प्यारे-प्यारे दो बच्चे हैं सुखी गृहस्थी है। फिर क्यो तुम उसमे आग लगाना चाहते हो ? जो अब हो नही सकता उसके प्रति इतना मोह, इतना आग्रह क्यो ?"

"वह सब म नही जानता। मै कुछ सुनना भी नही चाहता।"

"अदित ! मैने कह दिया है—आगे न बढना ''देखो मै ने सेफ्टी कैच हटा लिया हैं......अदित...मै...खबरदार अदित...।"

वह आवेश में काप रही थी। एक क्षण को अदित ठिठका, फिर मुसकरा कर आगे बढ़ा।

ठाय ! ठाय !

साथ ही एक चीख मजु के मुँह स निकल गई अदित झूमा और फिर लड़खड़ा कर बैठ गया

"यह क्या हो गया ? हाय, यह क्या किया मैंने ?" मंजु की आंखो के आगे अँधेरा छाने लगा,

तभी सुनाई दिया : "मंजु !"

वह चिहुक उठी. वही पहचाना हुआ स्वर था...वही जो दस वर्ष

पूर्व एक क्षण को सुनाई दे कर मौन हो गया था मजु, निशाना तो अच्छा लगा लेती हो. यहाँ आओ मेरे पास पास तो डर नहीं है ? हाँ और तुम एक काम करोगी ? बहुत थोड़े क्षण रह गए हैं मेरा सिर अपनी गोद में ले लो हाँ ..यों . अब हाथ दो अपना. हाँ अब बचन दो. .यों सिर हिला कर नहीं, मुह से कहो हां . इतना मजु, तुम्हे विश्वास करना होगा कि आज तुमने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है, बहुत भार हो गया था, जीवन अब ढोया नहीं जाता था तुम्ही ने बाधा था, तुम्ही ने मुक्त कर दिया मझे सब कुछ मिल गया...'

बहुत धीरे धीरे बोल पा रहा था वह. सास फूल आई थी. थोडी देर सुस्ताने के बाद उसने कहा

"तुम्हे लेने अब आता, मजु—इतना मूर्ख मै नही था तुम्हारे बच्चो को और तुम्हारे पति को मैने देखा है - मेरा आशीर्वाद ! सोचा था कही किसी कोने में एकाकी जीवन बिता दूंगा परन्तु तुम्हे एक बार देख लेने का लोभ सवारण नही कर पाता. लेकिन अपीम दया मयी निकली तुम—मेरा सहज मार्ग तुमने अपने ही हाथो प्रशस्त कर दिया ..एक काम करो, मजु—मेरा रिवाल्वर करवट मे आ गया है उसे निकाल कर मेरे हाथ मे दे दो दरवाजे की ताली जेब से निकाल लो और खबरदार, आज की बात किसी से भी कही ! मैने आत्महत्या की है- इस आशय का पत्र लिख कर मैने पहले ही जेब में डाल लिया है

कुछ क्षण का मौन. फिर धीर से कहा' "तुम दुखी न होना, मजु.

बहुत देर रुलाई को वह किसी तरह रोक हुई थी, अब सहन न हुआ. फफकर रो उठी.

अदित का स्वर धीरे धीरे मद्धा पड़ता जा रहा था दर्द से शरीर ऐंठने लगा था

'पानी !,' वह बुदबुदाया.

मजु ने इधरउधर देखा कमरे मे कहीं पानी नजर नही आया

'अभी लाती हू" कह कर उठने लगी तो इशारे से अदित ने रोक लिया।

"रहने दो, मेरे पास से मत उठो इस समय जितनी प्यास होठो पर रह जाएगी आगे की यात्रा उतनी ही मंगल होगी '

खुश्की से जबान ऐंट रही थी होठ भिचे जा रहे थे असहाय-सी जु एक क्षण को झिझकी और फिर अपने गीले अधर उन प्यासे होठों पर रख दिए.